श्री राम

हरि ओम् तत्सत् हरे

नमो श्री हरि स्वामि

hp

10.1

तादाद मुकद्दमा मे दर्जे वार दिखाई जावे।

...कद्दमा मे दर्जे वार दिखाई जावे।

तादाद मिकशन वार मुकद्दमा र दिखाई जावे।

...न स्कूल...

...न स्कूलों में म...

...की स्कूल में किसी दर्जे...



गीता-सार एकोत्तरी

शारदा प्रतिष्ठान, वाराणसी।



॥ ॐ नमः परमात्मने ॥

गीतासार एकोत्तरी



सद्गुरु बाबा शारदाराम जीका प्रसाद

टीकाकार

श्री वेदान्ती जी

प्रकाशक

शारदा प्रतिष्ठान

सी० के० १५।५१ सुड़िया बुलानाला

वाराणसी—१

प्रकाशक—
शारदा प्रतिष्ठान
सुड़िया
वाराणसी-१

प्रथम संस्करण १९६२
सद्गुरु बाबा शारदाराम जीके ७४ जन्मोत्सवके
शुभ अवसर पर प्रकाशित

मूल्य—५० न० पै०

मुद्रक—
बैजनाथ प्रसाद
कल्पना प्रेस
रामकटोरा रोड, वाराणसी



द्गुरु बाबा शारदाराम मुनिजी महाराज

श्रीतीर्थ रामटेकड़ी, पूनाके

श्री चरण कमलोंमें सादर समर्पित

१

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ॥३२॥

अर्जुनने कहा—

२

जिस प्रकार जिस पुरुषको भोजनकी इच्छा
नहीं है उसको भोजन पकानेसे क्या लाभ ?
इसी प्रकार हे कृष्ण ! जब मैं विजय, राज्य तथा
विषयानन्दको स्वप्नवत क्षणभंगुर होनेसे नहीं
चाहता तो हे गोविन्द ! हमें स्वप्नवत राज्यसे,
भोगोंसे, अथवा जीवित रहनेसे क्या प्रयोजन है ।
जैसे अमर होनेकी इच्छावाला विषपान नहीं
करता उसी प्रकार मुमुक्षु ब्रह्मलोक तकके दिव्य
सुखोंको विषवत अथवा वमनवत हृदयसे त्याग-
कर देता है । क्योंकि वह सच्चिदानन्द आत्मासे
भिन्न समस्त प्रपंचको असत जड़ दुःखरूप
जानता है । अतः हे जगद्गुरो ! आपकी कृपासे

दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द प्राप्ति
आशा रखनेवाले मुमुक्षु अर्जुनको युद्ध क
निष्प्रयोजन होनेसे कदापि कर्तव्य नहीं है।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥२।१

कृष्णने कहा—

जिस प्रकार निराकार निर्विकार आ
निद्राके कारण स्वप्नमें देह धारण करके
बन जाता है उसी प्रकार अविद्याके का
स्वप्नवत जाग्रत जगतमें भी देह धारण क
देही बन जाता है। जैसे निद्रासे मोहित होने
कारण स्वप्नकालमें स्वप्न देहकी बाल्यावस्थ
तरुणावस्था और वृद्धावस्थाकी अपनी अवस्थ
भ्रमसे प्रतीत होती हैं तथा स्वप्नान्तरमें स्व

...को छोड़कर देहकी प्राप्ति भी अपनेको ही
...ती हुई प्रतीत होती है, उसी प्रकार शुद्ध बुद्ध
...क्त सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द स्वरूपकी
स्मृति रूप अविद्यासे मोहित होनेके कारण
...त्मा स्वप्नवत जाग्रत स्थूल देहकी कौमार,
...वन और जरा अवस्थाओंको तथा उसी प्रकार
...प्न देहसे स्वप्नान्तर देहकी प्राप्तिकी भाँति
...न्तरकी प्राप्तिको सूक्ष्म देहमें न मानकर
...पने शुद्ध स्वरूप असंग आत्मामें देखता है।
...न्तु तत्वदर्शी अपनेको आकाशवत असंग,
...खंड जानता है और शेष प्रपंचको अविद्याका
...रिणाम तथा चेतनका विवर्त जानता है।

३

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥२।१६॥

जैसे स्वप्न दर्शनके पूर्व असत था औ
अदर्शन होनेपर असत हो जाता है, केव
दर्शन कालमें निद्राके कारण सत्य इव प्रती
होता है परन्तु निद्रा नष्ट होनेपर स्वप्न तु
हो जाता है, इसी प्रकार जाग्रत जगत भी दर्श
के पूर्व कुछ नहीं था तथा स्वप्न, सुषुप्ति काल
अदर्शन हो जानेपर कुछ नहीं रहता पर
दर्शन कालमें अविद्याके कारण सत्य इव प्रती
होता है। अतः अखिल स्थूल सूक्ष्म का
प्रपंच आदि अन्तमें अभाव रूप होनेसे इन्द्रज
तथा मृगजलवत प्रतीत होनेपर भी परम
दृष्टिसे असत हैं क्योंकि असत कभी सत न
हो सकता। अनादि अनन्त आत्मा त्रिका
बाध्य होनेसे सत है, जिसका कभी अभाव न
हो सकता। परन्तु अनादि सत्य आत्मा त

नादि अध्यस्त अनात्मा दोनोंका तत्व ब्रह्मदर्शी
ोग ही जानते हैं। अतः वे द्वन्द्वोंसे असंग
ते हैं।

४

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥ २।१७॥

अनादि अनन्त त्रिकालाबाध्य परमार्थ
रूप उसको जानो जिस सच्चिदानन्द सर्वा-
ष्ठान आत्मासे आकाश आदि सम्पूर्ण प्रपंच
सी प्रकार व्याप्त हैं जैसे रज्जुसे रज्जुमें प्रतीत
नेवाले सर्प दण्डादि व्याप्त हैं, अथवा स्वप्न
ष्टासे स्वप्न व्याप्त है। जैसे रज्जुसर्पका
पादान रज्जु अपनी पूर्व अवस्थाका त्याग किये
ना ही सर्प रूपमें भासित होती है उसी प्रकार

अविनाशी आत्मा सर्वका उपादान होनेपर अपनी पूर्व अवस्थाका त्यागकर विनाशको नहीं होता। क्योंकि सम्पूर्ण प्रपंचका अविन आत्मा विवर्तोपादान कारण है। इस व्यय अपक्षयसे रहित निर्विकार अव्यय आत्म नाश करनेमें आत्मासे भिन्न कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि आत्म भिन्न सर्व स्वप्न मिथ्या है तथा निष्क्रिय होनेसे स्वयं भी अ नाश नहीं कर सकता और ईश्वरसे अ होनेसे ईश्वर भी आत्माका नाश नहीं कर सक

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥२

जैसे जलके हलन चलनसे सूर्य हलन च क्रियाओंका कर्ता या कर्म नहीं होता उसी प्र



प्नवत अध्यस्त देहोंकी क्रियाओंसे सच्चिदानन्द सर्वाधिष्ठान आत्मा कर्ता या कर्म नहीं होता। अथवा जैसे घटकी क्रियाओंसे घटाकाश क्रियावान नहीं हो जाता उसी प्रकार देहोंकी क्रियाओंसे निष्क्रिय आत्मा किसी क्रियाका कर्ता या कर्म नहीं हो सकता। जो आत्माको किसी भी क्रियाका कर्ता या कर्म मानते हैं वे आत्माको कर्ता या कर्म माननेवाले दोनों अविवेकी पुरुष आत्माको नहीं जानते। वास्तवमें यह आत्मा न मरता है और न मारा जाता है। अर्थात न किसी क्रियाका कर्ता है और न किसी क्रियाका कर्म है क्योंकि समस्त चेष्टायें स्वप्नवत अध्यस्त हैं और आत्मा अधिष्ठान है।

६

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २।२० ॥

अजन्मा और नित्य होनेसे आत्माका ज
मरण नहीं हो सकता। आत्माका जन्म म
माननेसे अकृताभ्यागम और कृतनाश द
उपस्थित होंगे। अर्थात जन्म होनेसे आत्मा
कर्म बिना किये हुए ही भोग होगा तथा मृ
माननेसे इस जन्ममें किये हुए कर्मोंको भ
बिना ही नाश होगा। इस कारण वेदोक्त
व्यर्थ हो जावेंगे। अतः जन्म, सत्ता, वृ
विपरिणाम, अपक्षय, विनाश षट विकार स
देहके धर्म हैं आत्माके धर्म नहीं। आत्मा उत
होकर फिर अभावको प्राप्त होनेवाला नहीं
तथा शरीरकी भाँति पहले न होकर फिर ह
वाला नहीं है। अतः आत्मा जन्म तथा न

विकारोंसे रहित है। शाश्वत होनेसे अपत्तय विकारसे रहित है, पुराण होनेसे वृद्धि रूप विकारसे रहित है। शरीरके विपरीत परिणाम को प्राप्त होने पर आत्मामें विपरिणाम नहीं होता जैसे घटके टूटने फूटनेसे घटाकाश नहीं नष्ट होता।

७

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२।२१॥

जिस तत्वदर्शीने षट भाव विकार रहित, अनादि अनन्त त्रिकालावाध्य परमार्थ तत्वको आत्मा रूपसे अपरोत्त कर लिया है वह आत्म-वेत्ता कैसे मारता है और कैसे मरवाता है। अर्थात् वह न किसी क्रियाका करने वाला है और

न करवाने वाला है क्योंकि करने वाला य करवाने वाला विकार रहित नहीं हो सकता। यदि आत्मा किसी क्रियाका कर्ता या हेतु कर्ता होता तो आत्मा जन्म आदि षट विकारों रहित नहीं होता। चूँकि आत्मा षट विकारोंसे रहित है अतः आत्मा असंग निष्क्रिय हैं। जैसे नेत्रका प्रकाशक सूर्य देखना क्रियाका न तो कर्ता है और न हेतु कर्ता है उसी प्रकार तीनों देहोंका प्रकाशक साक्षी आत्मा न कुछ करता है और न किसीसे कुछ करवाता है। अविद्यासे उत्पन्न हुए गुण ही गुणोंमें स्वप्न वत् व रहें हैं।

८

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानिं गृहणाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२।२२॥

जैसे जीर्ण वस्त्रोंको त्यागकर नवीन वस्त्रों को मनुष्य ग्रहण करते हैं उसी प्रकार जीवात्मा जीर्ण शरीरोंको छोड़कर अविद्या पर्यन्त नवीन शरीरों को ग्रहण करता रहता है। अर्थात जैसे कपड़ेसे पृथक असंग शरीर है उसी प्रकार शरीर से पृथक असंग निर्विकार आत्मा है। जैसे ओवरकोट अन्डरकोट तथा कमीज कपड़ोंके नाम हैं आत्माके नाम नहीं, उसी प्रकार बाबूलाल, केसरीसिंह आदि शरीरोंके नाम हैं आत्मा के नाम नहीं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तीनों शरीरोंको ओवरकोट, अन्डरकोट तथा कमीजकी भाँति समझकर अपने शुद्ध बुद्ध मुक्त परमानन्द

स्वरूप आत्माको तीनों शरीरोंसे भिन्न निश्च
करना चाहिए।

९

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२।२३॥

निरवयव होनेसे आत्माको तलवार आ
शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि भस्मी भूत न
कर सकती, पानी गीला नहीं कर सकता औ
न वायु शोषण कर सकती है। अर्थात् जै
प्रातिभासिक सत्ता वाला सम्पूर्ण स्वप्न जग
व्यावहारिक सत्ता वाले जाग्रत जगतको को
हानि नहीं पहुँचा सकता, उसी प्रकार व्यावहारि
सत्ता वाला सम्पूर्ण जाग्रत जगत पारमार्थि
सत्ता वाले सच्चिदानन्द आत्माको कोई हा

नहीं पहुँचा सकता। क्योंकि अध्यस्त अधिष्ठानको विकारी नहीं कर सकता। यदि रज्जुसर्प रज्जु को काटनेमें समर्थ हो जाय तो माया मात्र तलवार आदिभी अनादि अनन्त निर्विकार आत्माको काट सकते हैं।

१०

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२।२४

आत्मासे भिन्न सर्व दृश्य स्वप्नवत अविद्या का कार्य होनेसे आत्माको हानि पहुँचाने में उसी प्रकार असमर्थ है जैसे वन्ध्याकुमार किसी को कष्ट देनेमें असमर्थ है अथवा जैसे खरगोश के सींगसे सिंहको नहीं मारा जा सकता अथवा जैसे मृगतृष्णाके जलसे किसीकी प्यास नहीं

बुझाई जा सकती, अथवा जैसे शुक्तिरजत
आभूषण नहीं बनाये जा सकते अथवा जै
चित्रमें बना हुआ दीपक अन्धकारको ना
करनेमें असमर्थ है। अतः यह आत्मा न कट
वाला, न जलनेवाला, न गलनेवाला और
सूखनेवाला होनेसे नित्य है। नित्य होने
सर्वगत है क्योंकि परिच्छिन्न पदार्थ नित्य न
हो सकता। व्यापक होनेसे स्थाणुवत स्थिर
तथा अचल और सनातन है।

११

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२।२

जैसे स्वप्नकी इन्द्रियोंसे जाग्रत जगतक
विषय नहीं किया जा सकता उसी प्रकार जाग्र
के मन बुद्धि आदि करणोंसे विषम सत्तावा

सच्चिदानन्द आत्मा विषय नहीं हो सकता, क्योंकि मन बुद्धि आदि समस्त करण स्वप्नवत अध्यस्त और प्रकाश्य हैं। अध्यस्त प्रकाश्य अपने अधिष्ठान प्रकाशकको प्रकाशित नहीं कर सकता है। अतः यह आत्मा सर्व करणोंका अविषय होनेसे अव्यक्त और अचिन्त्य है तथा निरवयव होने से अविकारी है। इस कारण उक्त लक्षण वाले इस आत्माको जानकर संसारका उसी प्रकार शोक नहीं करना चाहिये जैसे जाग्रत जगतका बोध हो जाने पर स्वप्नके लिए शोक नहीं किया जाता।

१२

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२।२६॥

जैसे भयानक स्वप्नसे जगा हुआ मनुष्य स्वप्नको तथा उससे विलक्षण अपने जाग्रत स्वरूपको आश्चर्यवत देखता, कहता और सुनता है उसी प्रकार इस स्पप्नवत अविद्या जनित भ्रममात्र सद्सत विलक्षण संसारसे परमार्थ तत्व में जगा हुआ पुरुष इस स्वप्नवत माया मात्र अनहुए संसारको तथा त्रिकालावाध्य अनादि अनन्त सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित सच्चिदानन्द मनवाणीके अविषय आत्माको आश्चर्यवत देखता, कहता और सुनता है। कोई मलीन बुद्धिवाले इस आत्माको सुनकर, देखकर और कहकर भी नहीं जान पाते हैं। अथवा इस आत्माको देखने वाले, कथन करने वाले तथा सुननेवाले विरले पुरुष आश्चर्य तुल्य हैं। अभिप्राय यह है कि आत्मतत्व दुर्विज्ञेय

होनेसे अनेक सहस्रोंमें से एक ही आत्माको ठीक-ठीक जान पाता है ।

१३

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२।३०॥

जैसे स्वप्नके समस्तदेह उत्पत्ति विनाश वाले होने पर भी स्वप्न साक्षी नित्य और अवध्य है उसी प्रकार स्वप्नवत अध्यस्त समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण देहोंके अत्यन्तनाश होने पर भी देहोंके साक्षी आत्माका नाश नहीं होता क्योंकि नित्य निवृत्त कार्याध्यासका कारण अध्यासमें लयरूप नाश अथवा ज्ञान द्वारा अत्यन्त नाश होने पर भी अधिष्ठान नाश नहीं हो सकता । अतः जैसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नके

समस्त देहोंके नाश होनेपर भी शोक नहीं करता उसी प्रकार विवेकीको स्वप्नवत भीष्मादि के शरीरोंके लिए ही नहीं बल्कि स्थावरसे ब्रह्मा पर्यन्त समस्त शरीरोंके लिये भी शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि आत्मा नित्य है और समस्त देह आकाशमें नीलमा तथा मृगजलवत मिथ्या हैं।

१४

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ २।५५॥

मुक्त पुरुषके स्वाभाविक लक्षण तथा वे ही जिज्ञासुके यत्न साध्य लक्षण कथन करते हुए भगवान कृष्ण अर्जुनको निमित्त बनाकर समस्त जिज्ञासुओंको उपदेश दे रहे हैं कि

अज्ञानीकी आत्मा भी मन प्राणसे रहित होनेसे सर्व इच्छाओंसे रहित परमानन्द रूप है परन्तु आत्माकी परमानन्दरूपता अज्ञात होनेके कारण तथा अज्ञान जनित स्वप्नवत अध्यस्त संसार व शरीरोंमें सतबुद्धि और सुखबुद्धि और अहंता ममता होनेके कारण अज्ञानीके मनमें लोक परलोकके भोगोंकी कामनायें उत्पन्न हुआ करती हैं। परन्तु जब संसारको रज्जु सर्पवत मिथ्या जान लेनेपर तथा आत्माका परमानन्द रूपसे दृढ़ अपरोक्ष हो जानेपर मनमें स्थित लोक परलोकके समस्त सुखोंकी इच्छाओंका उसी प्रकार बाध हो जाता है जैसे रस्सीके ज्ञानसे रज्जु सर्पका बाध हो जाता है तथा स्वयं ही आनन्दका समुद्र हो जाता है, तब वही स्थित प्रज्ञ कहलाता है।

२५

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रम्हनिर्वाणमृच्छति ॥२।७२॥

भगवान कृष्ण अर्जुनको निमित्त बनाकर मुमुक्षुजनोंको ब्रह्मनिष्ठाका माहात्म्य बतला रहे हैं कि हे अर्जुन अनादि अनन्त सामान्य चेतन ब्रह्मको आत्म रूपसे संशय विपर्यय रहित साक्षात्कार करनेवाला पुरुष इस अविचल ब्रह्मनिष्ठाके प्रतापसे कभी मोहित नहीं होता अर्थात् पूर्ववत अपनेको कर्ताभोक्ता संसारी कभी नहीं मान सकता। अन्तकालमें अर्थात् पिछली अवस्थामें भी ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर पुनः शरीर धारण नहीं करता। फिर जो ब्रह्मचर्याश्रमसे ही ब्रह्ममें स्थित है वह विदेह मोक्षको प्राप्त होता है, इसमें तो कहना ही क्या है। जैसे घट फूटते

ही घटाकाश महाकाशको तथा वायुके न रहनेपर तरंग जल स्वरूपको नित्य प्राप्त होनेके कारण तुरन्त प्राप्त-सा कर लेता है उसी प्रकार अविद्या नाश होते ही नित्य प्राप्त होनेसे निर्वाण परम पदकी तुरन्त प्राप्ति हो जाती है।

३ · न कर्म योग

१६

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥३।१७॥

जैसे सोया हुआ चक्रवर्ती राजा स्वप्नमें अपनेको महान दरिद्री देखकर अनेक तृष्णाओंसे युक्त हो जाता है परन्तु जाग जानेपर स्वप्नकी समस्त तृष्णाओंसे रहित होकर अपने राजा स्वरूपमें ही प्रीति करने लगता है और चक्रवर्ती राज्यको अनुभव करके तृप्त

रहने लगता है उसी प्रकार सच्चिदानन्द आत्म स्वरूपकी विस्मृतिरूपी निद्रामें सोया हुआ पुरुष जब सद्गुरुकी कृपासे जागकर अपने परमानन्द स्वरूपमें निष्ठा करनेसे आत्मारामी हो जाता है तथा सुखरूप होनेसे विषय सुखकी तृष्णासे रहित हो जाता है क्योंकि विषय सुख भी आत्माभास समझने लगता है तब वह भोक्ता न रहनेसे भोग मोक्षके समस्त कर्तव्योंसे रहित हो जाता है ।

१७

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।।३।१८।।

जिस विवेकीको कूटस्थ आत्माकी परमानन्द रूपता अपरोक्ष हो जाती है वह आत्मामें

१- वि. दे. आज्ञा २- सुख, दुख

ही परमप्रेम करनेवाला तत्वज्ञ समस्त लौकिक वैदिक कर्मोंके करने या न करनेसे आत्मदृष्टिसे कोई लाभ या हानि नहीं देखता क्योंकि उसकी दृष्टिमें भोक्ता भोग्य भोग तथा भोगके साधन स्वप्नवत मिथ्या हो जाते हैं। अर्थात् तत्वज्ञको कोई भी कर्म फल देनेमें समर्थ नहीं हो सकता क्योंकि वह अकर्ता अभोक्ता असंग निर्विकार है तथा किसी कर्म करनेका अभिमान उसी प्रकार नहीं करता जैसे जागने पर स्वप्नके कर्मोंका अभिमान नहीं किया जाता। जैसे जाग्रत पुरुष स्वप्नके किसी प्राणीसे भी कोई प्रयोजन नहीं रखता उसी प्रकार आत्मदर्शी आत्मदृष्टिसे ब्रह्मासे लेकर स्थावर पर्यन्त किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं रखता है क्योंकि आत्म भिन्न सर्व मिथ्या जानता है। ....

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥४।१६॥

भगवान कृष्ण पंडितका लक्षण बतलाते हुए कह रहे हैं कि उसके समस्त कर्म फलेच्छा और कर्तापनके अभिमानसे रहित होते हैं क्योंकि उसकी दृष्टिमें लोक परलोकके समस्त भोग मृगतृष्णाके जलवत् आभासमात्र हैं और वह स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों देहोंसे अतीत कूटस्थ आत्माको असंग व्यापक उसी प्रकार जानता है जैसे घटकाश घटसे अतीत महाकाश रूप होनेसे व्यापक है। जैसे घटकी क्रियाओंसे घटाकाश क्रियावान नहीं हो सकता उसी प्रकार देहोंसे करोड़ों कर्म होनेपर भी जो अपने परमार्थ स्वरूप कूटस्थ आत्म को निष्क्रिय

निर्विकार देखता है तथा अहंकार पूर्वक कर्म त्यागमें भी कर्म देखता है, अथवा जो कर्मरूप प्रपंचमें अकर्मरूप ब्रह्मको तथा अकर्मरूप ब्रह्ममें कर्मरूप प्रपंचको अध्यस्त देखता है और इस प्रकारकी ज्ञानाग्निसे समस्त कर्मोंको बाधित कर चुका है उसको ज्ञानी जन पंडित कहते हैं।

१६

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥४।२४॥

जैसे स्वप्नमें स्रुवादिक भी स्वप्नसाक्षी रूप हैं, हवि भी अर्थात् हवन करने योग्य द्रव्य भी स्वप्नसाक्षी रूप हैं, अग्नि भी स्वप्नसाक्षी रूप हैं, हवन करनेवाला स्वप्ननर भी स्वप्न-साक्षी रूप है और हवनक्रिया भी स्वप्नसाक्षी

रूप है उसी प्रकार यहाँ जाग्रतमें भी स्रु वादिक हवि, अग्नि, हवनकर्ता, और हवनक्रिया समस्त पदार्थ जाग्रत साक्षी ब्रह्म रूप हैं क्योंकि ब्रह्म सर्व प्रपंचका विवर्तोपादान कारण है। इस आत्मदर्शीके समस्त लोकसंग्रहार्थ किये हुए कर्म ब्रह्म बुद्धिसे बाधित होनेके कारण फल उत्पन्न करनेकी शक्तिसे रहित हैं। इसी कारण उसके समस्त कर्म भुने बीजवत अकर्म हैं।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥४।३३॥

द्रव्य रूप साधन द्वारा सिद्ध होने वाले कर्म यज्ञकी अपेक्षा ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि ज्ञानयज्ञके बिना समस्त कर्म यज्ञोंसे जन्म मरण

से छुटकारा नहीं हो सकता। जैसे समुद्र पार जाने वाले यात्रीको जब जहाज मिल जाता है तब समस्त रेल मोटर आदि सवारियोंका अन्त हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान रूप जहाज मिलने पर समस्त कर्म समाप्त हो जाते हैं क्योंकि कर्म कर्ताके अधीन हैं परन्तु ज्ञान होने पर अविद्या जनित कर्तापनका अभिमान नष्ट हो जाता है।

२१

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥४-३७॥

जैसे अग्नि काष्ठके समूहको भस्म कर देती है उसी प्रकार ज्ञानाग्नि सब कर्मोंको भस्म कर देती है। अर्थात् ज्ञान द्वारा अविद्याका नाश हो जाने पर संचित कर्मोंका स्वरूपसे नाश

हो जाता है और कर्तापनके अभिमानके नाश हो जानेसे क्रियमाण निर्बीज हो जाते हैं अर्थात् जन्म रूप फल देनेमें असमर्थ हो जाते हैं तथा प्रारब्ध कर्म भोग देकर ही नाश होते हैं, ज्ञानसे नाश नहीं होते परन्तु कर्ता भोक्तापनका अभिमान नष्ट हो जानेसे और आकाशवत असंग आत्मामें निष्ठा हो जानेसे प्रारब्ध कर्मों तथा उनके भोगोंसे भी ज्ञानी असंग हो जाता है अतः सभी कर्मोंसे ज्ञानी रहित हो जाता है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥४।३८॥

ज्ञानके समान पवित्र करनेवाला इस लोक में दूसरा कोई नहीं है क्योंकि ज्ञानसे उस सर्व

अनर्थोंकी मूल अविद्यारूपमलका सहज हीमें अत्यन्ताभाव हो जाता है जिसको नाश करनेमें ज्ञानको छोड़कर समस्त साधन मिलकर भी समर्थ नहीं हो सकते जैसे शंकरके धनुषको जनकके दरबारमें भगवान रामको छोड़कर समस्त राजा मिलकर भी तोड़नेमें समर्थ नहीं हुए। कर्मयोग द्वारा बहुत कालमें अन्तःकरण शुद्ध होने पर सद्गुरु द्वारा महावाक्योंका श्रवण करके मुमुक्षु स्वयं अपने शुद्ध अन्तःकरणमें जीव ब्रह्मकी एकताका संशय विपर्यय रहित अनुभव करता है। अर्थात् स्वयं आवरण भंग हो जाता है जैसे जाग्रत हो जाने पर निद्रा तथा निद्राजनित स्वप्न स्वयं समाप्त हो जाता है।

२१

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥४।३९॥

अश्रद्धालु पुरुषको ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। श्रद्धालु होनेपर भी प्रमाद करनेवालेको भी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। अतः श्रद्धालुको प्रमाद छोड़कर श्रवण मनन निदिध्यासनमें तत्पर होना चाहिए। यदि साधनमें तत्पर भी है परन्तु अजितेन्द्रिय है तब भी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। अतः मुमुक्षुको श्रद्धावान, वैराग्यवान तथा वेदान्त श्रवण मनन निदिध्यासनमें तत्पर होकर मोक्षदायक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान प्राप्त होनेपर तुरन्त मोक्ष उसी प्रकार हो जाता है जैसे रस्सीके ज्ञानसे मिथ्या सर्पसे तथा जाग्रतके ज्ञानसे स्वप्नसे तुरन्त मुक्ति हो जाती है। नित्य निवृत्त बन्धकी निवृत्ति और नित्य प्राप्त ब्रह्मकी प्राप्तिको मोक्ष कहते हैं जो ज्ञानके बिना असम्भव है।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥४।४१॥

ईश्वरार्थ निष्काम कर्मों द्वारा जिसने समस्त कर्म फलोंका त्याग कर दिया है तथा अन्तः-करण शुद्ध होनेपर अनात्मासे भिन्न आत्मा और परमात्माकी एकता दर्शन रूप ज्ञान द्वारा जिसका संशय अच्छी प्रकार नष्ट हो गया है अर्थात् उसने भली प्रकार इन संशयोंका निर्णय कर लिया है कि देहोंसे आत्मा भिन्न है या अभिन्न है, यदि भिन्न है तो कर्ता भोक्ता है या अकर्ता अभोक्ता, यदि अकर्ता अभोक्ता है तो अनेक और परिच्छिन्न है अथवा एक और व्यापक है, ब्रह्मसे आत्मा भिन्न है या अभिन्न है और यदि अभिन्न है तो सदासे अभिन्न है या ज्ञान

होनेके पश्चात् अभिन्न होता है तथा दृश्य प्रपं
कार्य है या भ्रम है। उपरोक्त संशयोंसे रहि
आत्मदर्शी कर्ममें अकर्म तथा अकर्ममें क
दर्शन रूप ज्ञानाग्निसे सर्व कर्मोंको भस्म अर्था
निर्बीज कर देता है। इस कारण वह कि
कर्मसे नहीं बँधता।

२५

योग युक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्व भूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥५।७

जिसने निष्काम कर्म योगके अभ्यास
शरीरको निषिद्ध कर्मोंसे रोक लिया है त
इन्द्रियोंकी विषयासक्तिको नष्ट कर दिया
और ध्यान योगसे अन्तःकरणको राग द्वेष त
विपरीत भावनासे रहित कर लिया है त

ज्ञान योग द्वारा अपनी आत्माको सर्वभूतोंमें उसी प्रकार व्यापक जान लिया है जैसे तरंगों में जल तथा भूषणोंमें स्वर्ण व्यापक होता है, वह तत्वज्ञानी कर्तापनके अभिमानसे शून्य होने के कारण कर्मोंसे नहीं बँधता, क्योंकि उसकी दृष्टिमें समस्त कर्म स्वप्नवत अविद्या मात्र हैं और आत्मा अधिष्ठान होनेसे असंग है।

२६

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥५।१६॥

जैसे जाग्रतके ज्ञानसे निद्राका नाश हो जाता है उसी प्रकार आत्मज्ञानसे जिनका अज्ञान नाश हो गया है उनका वह आत्म साक्षात्कारात्मक ज्ञान अज्ञान संशय भ्रमका उसी

प्रकार अत्यन्ताभाव कर देता है जैसे सूर्य रा
का नाश करके दृश्यका स्पष्ट बोध करा दे
है। जैसे सूर्यका काम केवल रात्रिको ना
करना है, अन्धकार नाश होते ही अन्धका
ढके हुए पदार्थ स्वतः प्रत्यक्ष हो जाते हैं उ
प्रकार आत्मज्ञान अज्ञान संशय भ्रमको ना
कर देता है, अज्ञान संशय भ्रम नाश होते
केवल आत्मा स्वयं प्रकाश रूपसे अपरोक्ष
जाता है।

निरन्तर परमात्म में स्थिति

२७

तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ ५।१७

उस परमार्थ तत्व सच्चिदानन्द ब्रह्ममें जिन
बुद्धि संशय विपर्ययसे रहित स्थित हो गई

५-५

और जैसे अज्ञानीका देहमें आत्मभाव है उसी प्रकार सर्वाधिष्ठान परब्रह्म परमात्मामें जिसका सहज अभिमान हो गया है और तत्पद तथा त्वंपदके शोधन द्वारा जिसने अपनी कूटस्थ आत्माका सच्चिदानन्द ब्रह्मसे घटाकाश महाकाश-वत मुख्य समानाधिकरण्य कर लिया है तथा जो आत्म भिन्न सर्व मिथ्या होनेसे केवल आत्मामें ही रत हैं और जिन्होंने ज्ञान द्वारा संसारके कारण रूप पापादि दोष नष्टकर दिये हैं, वे एकत्वदर्शी प्रारब्ध क्षय होनेपर फिर देह दृश्यका कभी दर्शन नहीं करते अर्थात वे जीवन्मुक्त ही विदेह मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

समभाव- सुख र८ दुःख को समान देखना

विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥५।१८

अन्तिम शरीर धारी तत्त्वदर्शी पण्डितके लक्षण बतलाते हुए भगवान कृष्ण अर्जुनको निमित्त बनाकर जिज्ञासु भक्तोंको उपदेश कर रहे हैं कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ विनीत सात्विक ब्राह्मणमें, रजोगुण युक्त गौ में और तमोगुण युक्त हाथी, कुत्ते, चाण्डाल आदिमें अर्थात् त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण सृष्टिमें तत्त्व दर्शी पण्डित समभावसे देखने वाले होते हैं। वे सात्विक राजस, तामस संसकारोंसे आत्म स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्मको निर्लेप असंग निर्विकार देखते हैं जैसे लट्टुओंमें अनेकता और विषमता है परन्तु बिजली सम और एक है इसी प्रकार मायाके सात्विक, राजस, तामस उपाधियोंमें विषमता और अनेकता है परन्तु बिजलीवत अधिष्ठान स्वयं प्रकाश ब्रह्म सम और एक है तथा असंग

निर्विकार है। जैसे सुनार जेवर में सोनेको ही देखता है, नाम रूपका दाम नहीं देता इसी प्रकार पण्डित अस्ति भाति प्रियको ही देखता है और नाम रूपको तुच्छ मानता है।

जैसे आकाश और प्रकाश असंग होनेसे गंगा, तालाब तथा नालियोंमें पवित्र या गन्दे नहीं हो जाते, सर्वत्र निर्लेप असंग रहते हैं, उसी प्रकार पण्डितकी दृष्टिमें आत्म स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म सर्वत्र असंग निर्लेप है। निज स्वरूप ब्रह्मकी असंगताका प्रधान कारण यह है कि त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण प्रपंच स्वप्नवत तथा रज्जु सर्पवत अध्यस्त है और घटाकाशवत आत्मासे महाकाशवत अभिन्न सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म सर्व प्रपंचका अधिष्ठान है। अतः

अध्यस्तसे अधिष्ठान कदापि विकारी नहीं हो सकता।

२६

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥५।२

जो अज्ञानी जीव देहाभिमानी हैं वे प्रि पुत्र धनादिकी प्राप्तिमें फूले नहीं समाते तथ अप्रिय मृत्यु आदिकी प्राप्तिमें महान विषा करते हैं। परन्तु जिन तत्वदर्शी विद्वानोंने श्रु और युक्तिसे प्रमाणगत तथा प्रमेयगत सन्दे से रहित होकर अपनी बुद्धिको अद्वैत ब्रह्म स्थिर कर लिया है तथा ब्रह्म साक्षात्कार अज्ञान नष्ट कर लिया है वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष स ब्रह्ममें ही आत्मभाव रखते हैं। वे तत्वद

प्रियकी प्राप्तिमें हर्षित और अप्रियकी प्राप्तिमें उद्विग्न नहीं होते क्योंकि जैसे स्वप्नके प्रिय अप्रिय पदार्थ जाग्रत पुरुषके पास पहुँच ही नहीं सकते उसी प्रकार परमार्थ दृष्टिसे तत्वदर्शीके आत्म स्वरूपमें व्यावहारिक प्रिय अप्रियका अत्यन्ताभाव है तथा व्यावहारिक दृष्टिसे प्रिय अप्रिय सम्पूर्ण पदार्थ मय कर्ता भोक्ताके ज्ञानसे बाधित हो जाते हैं।

३०

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥५।२८

जिसने इन्द्रियों, मन तथा बुद्धिको अपने वशमें कर लिया है अर्थात अन्तःकरणको निष्काम कर्म, उपासना, ज्ञानसे मल विक्षेप

आवरणसे रहित कर लिया है और जैसे अविद्या से मोहित जीव स्त्री पुत्रादि गौणात्माका तथा पंचकोश मिथ्यात्माका स्वाभाविक अभेद चिन्तन किया करते हैं उसी प्रकार जो पंचकोशों के साक्षी परमात्माका आत्मरूपसे मनन करने वाला है और विषय सुखको आत्माभास जान लेनेके कारण विषय सुखकी तृष्णासे रहित है तथा समस्त द्वैत प्रपंचको स्वप्नवत अविद्याका परिणाम चेतनका विवर्त जान लेनेसे तथा आत्माको निर्द्वैत सच्चिदानन्दघन अपरोक्ष कर लेनेसे जो भय क्रोधसे रहित हो गया है वह शरीरके प्रारब्ध पर्यन्त होते हुए भी जीवन्मुक्त है क्योंकि देह दृश्यको मृगजलवत प्रतीतिमात्र जानता है ।

३१

६ में आत्म संयम योग

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥६–५॥

जैसे शौच, भोजन स्वयं करना पड़ता है उसी प्रकार अपनी मुक्तिके साधन स्वयं करने होंगे। संसार सागरमें डूबे हुए जीवात्माका पुत्रादि उद्धार नहीं कर सकते इस कारण उद्धार करनेवाला अपना शुद्ध मन ही बन्धु है और संसार सागरमें डुबानेवाला अशुद्ध मन ही अपना शत्रु है, क्योंकि मनसे भिन्न दूसरे शत्रु संसार सागरमें डुबानेमें समर्थ नहीं है। अतः वैराग्य अभ्यास द्वारा ईश्वर कृपासे मनुष्य शरीर तथा सत्संग पाकर जन्म-मरणसे अपना उद्धार कर लेना चाहिये, रागद्वेषके वशीभूत होकर चौरासी

लक्ष योनियोंमें अपने आपको नहीं गिरान
चाहिए।

३२

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥६-६।

भगवान कृष्ण अर्जुनको निमित्त बनाक मुमुक्षुजनोंको उपदेश दे रहे हैं कि वह म अपना बन्धु है जिसके द्वारा कार्य कारण संघा रूप आत्मा जीत लिया गया अर्थात् पाप विषयासक्ति तथा अविद्याका त्याग कर दिय गया। जिस विषयासक्त मनके द्वारा इन्द्रिय पर विजय प्राप्त नहीं की गई वह अशुद्ध म ही अपना शत्रु है जो अपना अकल्याण करने ही सदा प्रवृत्त रहता है। भक्ति वैराग्य ज्ञान

युक्त मनको बन्धु कहने का कारण यह है कि ज्ञान द्वारा नर नारायण हो जाता है तथा विषयासक्त मनको शत्रु कहने का कारण यह है कि पापों और विषयासक्तिके कारण जीवको नरकों तथा शूकर कूकर नीच योनियोंकी बार-बार प्राप्ति होती है ।

३३

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥६-८॥

जो योगी ज्ञान विज्ञानसे तृप्त हो अर्थात श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हो वह ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा है । प्रमाणगत, प्रमेयगत संशयसे रहित शास्त्रज्ञको श्रोत्रिय कहते हैं और तीनों देहोंके अभिमानसे शून्य तथा सर्वाधिष्ठान साक्षी सच्चिदानन्दघन

ब्रह्ममें सहज आत्मभाव से युक्तको ब्रह्मनि
कहते हैं। ब्रह्म साक्षात्कारसे जिसकी जाननेक
कांक्षा समाप्त हो गई हो उसको तृप्त कहते हैं
जैसे घट उपाधिसे घट उपहित आकाश असं
निर्विकार होता है उसी प्रकार जो अपने नि
स्वरूप अन्तःकरण उपहित साक्षी चेतनक
पंचकोशोंसे कूट (लोहारकी निहाई) व
असंग निर्विकार जानता है और जिसक
इन्द्रियाँ विषयासक्तिसे शून्य है तथा अ
अध्यस्त मिट्टी पत्थर, स्वर्णको समान मिथ्
अथवा अधिष्ठान ब्रह्मरूप देखता है वह यो
युक्त अर्थात जीवन्मुक्त है।

३४

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥६-२५

भगवान कृष्ण योगकी परमविधि बतला रहे हैं कि सात्विक धारणासे युक्त बुद्धि द्वारा मनको क्षण भंगुर दृश्यसे उपराम करके निज स्वरूप सच्चिदानन्द घन व्यापक आत्मामें लगावे अर्थात अधिष्ठान होनेसे सर्व आत्मा ही है आत्मासे अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं ऐसा निश्चय करे तथा आत्मासे भिन्न सर्व मिथ्या होनेसे किसी वस्तुका भी चिन्तवन न करे। जैसे जाग्रत अवस्थामें तुच्छ स्वप्नका चिन्तवन छोड़ दिया जाता है उसी प्रकार पंचकोशातीत तीनों अवस्थाओंका साक्षी निर्द्वैत सच्चिदानन्द घन आत्मा मैं हूँ ऐसा निश्चय करके समस्त स्थूल सूक्ष्म कारण प्रपंचका बाध कर देना चाहिए जैसे रज्जुका ज्ञान होने पर रज्जुसर्पका बाध कर दिया जाता है अर्थात मिथ्या निश्चय कर लिया जाता है।

३५

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥६-२६

—भगवान कृष्ण योगका परम फल बतला
हुए उपदेश दे रहे हैं कि योगयुक्त समद
अपने निज स्वरूप अनादि अनन्त सच्चिदान
आत्माको सर्व प्रपंचका अधिष्ठान, जानता है
इस कारण जैसे रज्जुमें अध्यस्त सर्प, दण्डा
प्रतीत होते हैं और उन अध्यस्त सर्प दण्डा
में रस्सी व्यापक है उसी प्रकार समदर्शी यो
अपनी आत्माको सर्वभूतोंमें व्यापक तथा स
भूतोंको आत्मामें अध्यस्त देखता है अर्थ
परमात्माको ही आत्मा जानने वाला योगी अप
से भिन्न किसीकी सत्ता स्वीकार नहीं करता

सर्व देशी, अविनाशी तथा विवर्तरूपसे सर्वरूप होनेसे अपनी आत्माको देश, काल, वस्तुके अन्तसे रहित व्यापक जानता है।

३६

योमां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥६-३०॥

जैसे सर्व घटाकाशोंकी आत्मा महाकाश है उसी प्रकार सर्व जीवोंकी आत्मा भगवान कृष्ण हैं। अतः भगवान कृष्ण उपदेश दे रहे हैं कि मुझ सच्चिदानन्द सर्वात्मा ब्रह्मको जो समदर्शी सम्पूर्ण प्रपंचमें व्यापक देखता है और स्वप्नवत सम्पूर्ण प्रपंचको मुझ साक्षी सर्वाधिष्ठान परमेश्वरमें अध्यस्त देखता है उसको मेरा स्वरूप परोक्ष नहीं होता तथा वह समदर्शी भी

मुझ ब्रह्मसे परोक्ष नहीं होता क्योंकि घटाका
महाकाशवत आत्मा और मुझ परमात्मामें अभे
है, भेद अविद्या जनित है। अतः अविद्या ना
होते ही भेद भ्रान्ति सदाके लिए नष्ट
जाती है।

:७

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥६-३

जिस ज्ञानवान योगीने अपने दुःखों
अत्यन्त निवृत्ति तथा परमानन्दकी प्राप्ति
ली है परन्तु दूसरोंके दुःख सुखकी परवाह न
करता उस ब्रह्म निष्ठ योगीसे वह शीलवा
तत्वदर्शी योगी श्रेष्ठ है जो दूसरोंके दुःख
निवृत्ति तथा सुखकी प्राप्तिके लिये सदा
प्रकारसे यत्न करता रहता है क्योंकि वह अप

दुःख सुखके समान ही दूसरोंके दुःख-सुख समझता है अर्थात वह सदा ध्यान रखता है कि अपने ही भाँति दुःख सबको अप्रिय तथा सुख सबको प्रिय है। इस कारण वह किसीको दुख नहीं देता बल्कि दुःख दूर करनेका तथा सुख देनेका यत्न करता है। इस प्रकारका अहिंसक शीलवान ब्रह्मनिष्ठ योगी सर्वश्रेष्ठ हैं। ऐसा भगवान कृष्ण अपना मत बतलाते हैं।

३८

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥७–२॥

जैसे नदी पार करने वाले दस पुरुषोंमें गिनने वाले दशम पुरुषको अपनेको न गिनने के कारण जब यह भ्रम हो गया कि दसवाँ डूब

गया तो किसी महापुरुषने उसको दशम पुरु
ज्ञानका उपदेश दिया कि घबड़ाओ मत द
पुरुष है डूबा नहीं। तब दशम पुरुषको द
पुरुषका परोक्ष ज्ञान हुआ और असत्वापाद
आवरण निवृत्त हो गया। जब उस महापुरु
दशम पुरुषके विज्ञानका उसको उपदेश कि
कि नौको गिननेवाले तुम्हीं दशम पुरुष हो
उसको दशम पुरुषका अपरोक्ष ज्ञान भी हु
कि मैं ही दशम पुरुष हूँ और उसका अभा
पादक आवरण भी निवृत्त होने से वह शो
मुक्त हो गया। इसी प्रकार अर्जुनके शोक
दूर करने के लिए भगवान कृष्ण कहते हैं
मैं तुझसे यह ज्ञान विज्ञान सहित सम्पूर्ण कहूँ
क्योंकि बिना ज्ञान विज्ञानके असत्वापादक
अभानापादक आवरण नष्ट नहीं होते
आवरण नष्ट न होने पर शोक मोहकी नि

नहीं हो सकती। मुझ सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान परमेश्वरके ज्ञान विज्ञानके द्वारा दोनों आवरण भंग होने पर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता अर्थात वह कृतकृत्य हो जाता है।

३९

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७-७॥

चूंकि सम्पूर्ण दृश्यका कारण परा अपरा प्रकृतियोंका मैं पुरुषोत्तम सच्चिदानन्द ब्रह्म अधिष्ठान हूँ अतः हे अर्जुन! मुझसे अतिरिक्त दूसरा कुछ न था, न है, न होगा। सूत्रमें सूत्रकी मणियोंकी भाँति सम्पूर्ण जगत मुझमें पिरोया हुआ है अर्थात मेरे आश्रित है क्योंकि कार्य कारण प्रपंच अध्यस्त है और मैं परमेश्वर

जिज्ञासु- अपने को मिथ्या चेतन
१- ५६ अनन्य भेद में एकीभाव ज्ञानाकार एकी...

अधिष्ठान हूँ । जैसे सूतका सर्व मणियोंमें अन्व
है और मणियोंका परस्पर व्यभिचार है त
सूत एक और व्यापक है परन्तु मणियाँ ना
और परिच्छिन्न हैं, उसी प्रकार मुझ ए
सच्चिदानन्द व्यापक परमात्माका सम्पूर्ण
प्राणियोंमें अन्वय है तथा नाना परिच्छिन्न
भूत प्राणियोंका परस्पर व्यभिचार है । अ
केवल मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म सत्य हूँ तथा
अतिरिक्त सर्व जगत स्वप्नवत मिथ्या है क्योंकि
व्यभिचारी पदार्थ सत्य नहीं हो सकता ।

२- अनन्य प्रेम भक्ति वाला १८, ९-८

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥७-१७

आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी च

प्रकारके भक्तोंमें भगवान कृष्ण ज्ञानीको विशेष बताते हैं, क्योंकि ज्ञानी मुझ परमात्मामें निष्काम होनेसे उसी प्रकार नित्य स्थित रहता है जैसे घटाकाश महाकाशमें नित्य स्थित रहता है तथा ज्ञानी मुझ परमात्माके अतिरिक्त त्रिलोकीको स्वप्नवत भ्रममात्र जानता है इस कारण वह तत्त्वज्ञानी मेरा अनन्य भक्त होता है क्योंकि उसकी दृष्टिमें मैं वासुदेव ही सर्वरूप हूँ जैसे स्वर्ण भूषणोंके रूपमें तथा जल तरंग बुद्बुदोंके रूपमें प्रतीत होता है। ज्ञानी मुझ ब्रह्मको ही अपनी आत्मा जानता है इस कारण ज्ञानीको मैं परम प्रिय हूँ तथा अन्य तीन भक्त मुझको अपनेसे भिन्न जानते हैं इस कारण उनको मुझसे गौण प्रेम होता है क्योंकि आत्मासे भिन्न पदार्थोंमें गौण प्रेम होता है।

चूँकि ज्ञानी अपनी आत्माको ब्रह्म जानता है
अतः ज्ञानी भी मुझे परम प्रिय है क्योंकि ज्ञा
मेरी आत्मा है। अर्थात ज्ञानी और मुझ
परमात्मा कृष्णमें अभेद है।

४१

उदारा सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥७-१८

भगवान कृष्णका कहना है कि मुझ
श्रद्धा रखनेके कारण आर्त, अर्थार्थी औ
जिज्ञासु भक्त भी उत्तम हैं परन्तु ज्ञानी
मेरा स्वरूप ही है ऐसा मेरा मत है। इस कार
अन्य तीनों भक्त प्रिय हैं और ज्ञानी अत्यन्
प्रिय है क्योंकि आत्मामें सबको मुख्य प्रे
होता है। यद्यपि मैं सभी जीवोंकी आत्मा

परन्तु अज्ञान रूप मायासे मोहित होनेके कारण अपने स्वरूपको तथा मेरे स्वरूपको तथा जगत के स्वरूपको नहीं जानते और अनात्माको ही आत्मा माना करते हैं और मुझमें भेद बुद्धि रखते हैं। गज, द्रौपदीकी भाँति श्रद्धालु आर्त भक्त, ध्रुवकी भाँति श्रद्धालु अर्थार्थी भक्त तथा प्रह्लादकी भाँति जिज्ञासु भक्त भी ज्ञानी भक्त बनकर मुझे अत्यन्त प्रिय हो जाते हैं अतः वे भी श्रेष्ठ हैं। परन्तु ज्ञानी भक्त मेरा स्वरूप उसी प्रकार बन चुका है जैसे नदी समुद्रमें पहुँच कर समुद्र बन जाती है। जैसे सब नदियों की उत्तम गति समुद्र हो जाना है उसी प्रकार सब जीवोंकी उत्तम गति स्वरूप मैं ब्रह्म हूँ जिसमें स्थिर बुद्धि ज्ञानी भक्त अच्छी प्रकार अभेद रूपसे स्थित है।

४२

वहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥७-१

भगवान कृष्ण अन्तिम शरीर धारी ज्ञा
महात्माकी दुर्लभताका कथन कर रहे हैं
असंख्य पवित्र जन्मोंमें साधन करते क
अन्तिम जन्ममें तत्व ज्ञानको प्राप्त करके ज्ञा
'सर्व ब्रह्म है' इस प्रकार मेरा भजन करता है
जैसे रस्सीमें प्रतीत होनेवाले अध्यस्त सर्प,
माया आदि सबके सब रस्सी मात्र ही हैं अथ
मरुभूमिमें प्रतीत होनेवाला मृगजल मरुभू
मात्र ही है उसी प्रकार ईश्वर, जीव तथा सम्पू
जड़ जङ्गम जगत सर्व ब्रह्म मात्र ही हैं । ब्रह्म
अतिरिक्त न कुछ था न है और न होगा । इ

प्रकारका ब्रह्मदर्शी ज्ञानी महात्मा चन्दन और पारसकी भाँति अति दुर्लभ है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥८-१३॥

भगवान कृष्ण ध्यान योगीकी गतिका वर्णन कर रहे हैं कि जो ध्यान योगी मुझ ब्रह्मके वाचक एकाक्षर प्रणवको उच्चारण करता हुआ तथा मुझ वाच्य विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वरसे विश्व, तैजस, प्राज्ञका अभेद चिन्तवन करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है वह देवयान मार्गसे ब्रह्म लोक पहुँचकर मुक्त हो जाता है तथा पुनः शरीर धारण नहीं करता। प्रणवमें अकार विराटका वाचक है जिसमें

विश्वका अन्तर्भाव है। समष्टि तीनों शरीरोंउ
विशिष्ट चेतनको विराट कहते हैं। प्रणवमें उक
हिरण्यगर्भका वाचक है जिसमें तैजसका अन्त
र्भाव है। समष्टि सूक्ष्म, कारण दो शरीरोंसे
विशिष्ट चेतनको हिरण्यगर्भ कहते हैं। प्रणवमें
मकार ईश्वरका वाचक है जिसमें प्राज्ञका अन
र्भाव है। समष्टि कारण शरीर मायासे विशि
चेतनको ईश्वर कहते हैं। प्रणवमें अर्धमा
निरुपाधिक शुद्ध परमार्थ चेतनकी वाचक
जिसमें चतुर्थपाद कूटस्थ आत्माका अन्तर्भा
है। यदि ध्यान योगीका अन्त समयमें आवरण
भंग हो गया तो विदेह मुक्तिको तुरन्त प्राप्त
हो जाता है ब्रह्मलोक नहीं जाना पड़ता। यदि
किसी प्रतिबन्धके कारण अन्त समयमें आवरण
भंग नहीं हुआ तो ब्रह्मलोक पहुँच कर वहाँ

उसका आवरण भंग हो जाता है और वहाँकी आयु समाप्त करके विदेह कैवल्यको प्राप्त हो जाता है। दृढ़ अपरोक्ष ज्ञानी किसी प्रकार शरीर त्याग करे वह सदा मुक्त है। उसकी मुक्तिमें सन्देह नहीं।

४४

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥८-१५॥

भगवान कृष्ण अपने स्वरूपकी प्राप्तिका महत्व वर्णन कर रहे हैं कि मोक्षरूप परमसिद्धि को प्राप्त हुए अन्तिम शरीरधारी एकत्वदर्शी महात्माजन मुमुक्षु सच्चिदानन्द ब्रह्मको ही आत्मा रूपसे संशय विपर्यय रहित होकर जानकर पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होते जो अधिभूत, अधिदैव,

अध्यात्म त्रिविध दुःखोंका आलय और क्षण-
भंगुर है। नित्य प्राप्त सर्वात्मा सच्चिदानन्द
ब्रह्म अज्ञानके कारण अनादि कालसे जीवको
अप्राप्त है जिसके कारण देह दृश्यमें अहंकार
ममतापूर्वक राग-द्वेष किया करता है। राग द्वेषके
कारण देहाभिमानी जीव प्रायः पापोंमें
रहता है और जब कभी पुण्य करता है
सकाम करता है। अतः पाप तथा सकाम पुण्य
के फलको भोगनेके लिए बराबर जन्म धारण
किया करता है जो त्रिविध दुःखोंका भंडार है।
जिस महात्माने परमात्माका साक्षात्कार
लिया उसके संचित कर्म अविद्याके नाश
जानेके कारण स्वरूपसे नाश हो जाते हैं
प्रारब्ध कर्म भोग देकर समाप्त हो जाते हैं और
क्रियमाण कर्म कर्तापनके अभिमानके बाधित

हो जानेके कारण भुने बीजकी भाँति जन्मरूप अंकुर देनेमें असमर्थ हो जाते हैं। अतः ब्रह्म-निष्ठ महात्मा शरीर त्याग करके पुनः कहीं भी शरीर धारण नहीं कर सकता क्योंकि उसके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं।

४५

अव्यक्तोऽक्षरः इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। २१
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥८-२१॥

कार्य जगत् तथा कारण अविद्यासे विलक्षण मैं परमात्मा अव्यक्त और अक्षर कहलाता हूँ क्योंकि मेरा स्वरूप मन इन्द्रियोंका अविषय तथा देश काल वस्तुके परिच्छेदसे रहित होनेसे अनन्त है। मेरे इस अद्वितीय अनादि अनन्त परमार्थ स्वरूपको परमगति भी कहते हैं क्योंकि

मुझ सच्चिदानन्द ब्रह्म रूप परमगतिको प्र
करनेके पश्चात् जीवको लौटना नहीं पड़
अर्थात् पुनः शरीर धारण नहीं करना पड़ता
मेरे इस अनादि अनन्त परमार्थ स्वरूप ब्रह्म
मुझ विष्णुका परमधाम भी कहते हैं।
तरंगोंका परमधाम जल है अथवा घटाकाशों
परमधाम महाकाश है उसी प्रकार मुझ वि
का परमधाम ही सब जीवोंका भी परमधाम है

४६

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥९-२॥



भगवान कृष्ण ब्रह्मज्ञानकी महिमाका उ
देश कर रहे हैं कि यह अध्यात्म ज्ञान अवि
का नाशक होनेसे सब विद्याओंका राजा
क्योंकि ब्रह्मज्ञानको छोड़कर समस्त विद्

मिलकर भी अविद्याको नाश करनेमें समर्थ नहीं परन्तु ब्रह्मज्ञान किसीकी सहायताके बिना ही अकेले ही अविद्याको नाश करनेमें उसी प्रकार समर्थ है जैसे सूर्य अकेले ही चन्द्रमा तारोंकी सहायताके बिना ही रात्रि नाश करनेमें समर्थ है। ब्रह्म ज्ञान सब गोपनीयोंका भी राजा है क्योंकि केवल श्रद्धालु मुमुक्षुको ही यह ब्रह्मज्ञान देने योग्य है। मन बुद्धिके परे परम गूढ़तत्व ब्रह्मका अपरोक्ष करानेवाला होनेसे भी इस ब्रह्मज्ञानको सब गोपनीयोंका राजा कहते हैं। अनन्त जन्मों के संचित कर्मों तथा महान मलिन देहाभिमान को नाश करनेवाला होनेसे ब्रह्मज्ञानको पवित्र और उत्तम कहा गया है। नित्य अपरोक्ष ब्रह्म को आत्मरूपसे प्रत्यक्ष प्राप्ति करानेवाला होनेसे ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष फलवाला तथा धर्मयुक्त है।

रत्नोंके विवेक विज्ञानकी भाँति ब्रह्मज्ञान समझ
में सरल है और इसका फल अविनाशी है अ
नित्य मोक्ष है ।

४७

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥९-

भगवान कृष्ण कर्मोंसे निर्लेप रहने
कारण बतला रहे हैं कि मुझको समस्त
बन्धनके कारण नहीं हो सकते क्योंकि मैं कर्ता
के अभिमानसे रहित होनेसे कर्मोंमें उदासीन
स्थित रहता हूँ तथा अभोक्ता होनेसे कर्म
भोगनेकी आसक्तिसे रहित हूँ । अर्थात् जो
मनुष्य मेरी भाँति कर्ता भोक्तापनके अभिमा
रहित हो जावेगा वह कर्म बन्धनसे मुक्त

जाता है। आसक्ति और कर्तापनका अभिमान ही कर्म बन्धनका कारण है। परमार्थ दृष्टिसे आत्मा अकर्ता अभोक्ता है। परन्तु जैसे लाल पुष्पकी लालामी स्फटिक मणिमें प्रतीत होने लगती है उसी प्रकार अन्तःकरणके धर्म कर्ता भोक्तापन आत्मामें प्रतीत होते हैं। अविद्यासे मोहित जीव अन्तःकरणोंके धर्मोंको आत्मामें प्रतीत होनेसे आत्माके ही धर्म मान लेते हैं। जिसके कारण स्वप्नवत कर्मबन्धनसे वे मुक्त नहीं हो सकते।

४८

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥ —१५।

भगवान कृष्ण उपासनाके प्रथक-प्रथक भेद

बतलाते हुए उपदेश करते हैं कि कोई तो
ज्ञान यज्ञसे पूजा करता है अर्थात उसकी
में मुझ सच्चिदानन्द ब्रह्मसे अतिरिक्त
नहीं रहता। वह जगतको मृगजल व स्वप्न
भाँति भ्रममात्र अन हुआ जानता है।
ब्रह्मको ही अपनी आत्मा उसी प्रकार समझ
है जैसे घटाकाश की आत्मा महाकाश है
धानकी आत्मा चावल है। मुझ विराट स्व
परमात्माको कोई एकत्व भावसे भजते हैं अ
उनका निश्चय होता है कि समस्त सूर्य चन्द्र
नाम रूपोंको मुझ वासुदेवने ही ग्रहण कि
है। अतः वे विश्व रूपसे मेरा ही दर्शन कि
करते हैं। कोई भेद उपासक इस रहस्य को
जानकर मुझ सर्व रूप परमेश्वरमें भेद
रखते हैं। अर्थात शिव, विष्णु, सूर्य चन्द्रा

परस्पर भेद मानते हैं और किसी एकको ही ईश्वर मानते हैं तथा दूसरोंको मुझ ईश्वरसे भिन्न जानते हैं। कोई कोई अनेक प्रकारसे देवी देवताओं की उपासना करते हैं।

४६

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥१०-२०॥

भगवान कृष्ण अपने स्वरूपकी चिन्तवन विधि उत्तम अधिकारी को बता रहे हैं कि मैं सब भूतोंके हृदयमें आत्मा रूपसे उसी प्रकार स्थित हूँ जैसे आकाश सर्व घटोंमें स्थित है। अतः जैसे घटाकाश का महाकाशसे अभेद होता है उसी प्रकार उत्तम अधिकारीको मुझ सच्चिदानन्द व्यापक परमात्मासे अपना अभेद चिन्त-

वन करना चाहिए। मुझ परमात्मा का के
आत्मासे ही अभेद नहीं है बल्कि समस्त भ
से भी अभेद है क्योंकि जैसे तरंगोंका अथ
भूषणोंका आदि-मध्य-अन्त जल व स्वर्णमें हो
है उसी प्रकार सर्व भूतोंका विवर्तोपादान का
होनेसे सबका आदि-अन्त-मध्य मैं ही हूँ। अ
मैं वासुदेव ही सर्व हूँ, मुझसे भिन्न कुछ न
इस प्रकार चिन्तवन करना चाहिए।

५०

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥१०-३

हे अर्जुन समस्त सृष्टियोंका आदि अ
मध्य मैं हूँ। अर्थात जैसे स्वप्न साक्षीमें स्व
जगत उत्पन्न होता है, स्थित होता है और

हो जाता है, उसी प्रकार मुझ जाग्रत साक्षी सच्चिदानन्द ब्रह्ममें समस्त जगत स्वप्नवत मेरी मायासे उत्पन्न होता है, स्थित रहता है तथा लीन हो जाता है। मैं समस्त विद्याओंमें मोक्ष देने वाली अध्यात्म विद्या हूँ। वक्ताओं द्वारा बोले जाने वाले बाद, जल्प तथा वितंडामें तत्व निर्णय रूप फल वाला होनेसे गुरु शिष्यका बाद मैं हूँ। प्रमाण तर्कसे हार जीतकी दृष्टि रखकर अपने पक्षका मंडन तथा दूसरे पक्षका खंडन जल्प कहलाता है। अपना कोई पक्ष न रखकर दूसरे पक्षका खंडन करना वितंडा कहलाता है।

५

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥१०-४२॥

भगवान कृष्ण अपने व्यापकताको व
करते हुए अर्जुनको उपदेश दे रहे हैं कि
अर्जुन जैसे स्वप्नके बहुत ज्ञानसे भी
प्रयोजन सिद्ध नहीं होता क्योंकि स्वप्न
मात्र है उसी प्रकार कार्य कारण रूप सम
चराचर मिथ्या प्रपंचको जान लेनेसे तुम
उत्तम अधिकारीका कोई लाभ नहीं हो सकत
जैसे आकाशके एक अंशमें नीलमा स्थित
उसी प्रकार मुझ सच्चिदानन्द ब्रह्मके एक
में सम्पूर्ण प्रपंच अविद्यासे कल्पित है।
पृथ्वीके एक अंशमें सम्पूर्ण घट स्थित हैं
प्रकार मुझ अखंड अनन्त सच्चिदानन्द ब्र
एक अंशमें सम्पूर्ण जगतकी स्वप्नवत उत्प
स्थिति, प्रलय हुआ करती है। अर्थात मैं
मात्मा ही मायासे अनेक रूप होता हुआ
निर्विकार एक रस अद्वैत हूँ।

५२

न तु मां शक्यसे द्रष्टमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥११-८॥

भगवान कृष्णकी विभूतियोंका वर्णन सुनकर अर्जुनको भगवानके ऐश्वर्यमय विश्व रूपके दर्शनकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। अतः भगवान कृष्णने अर्जुनसे कहा कि मेरी अघटित घटना सामर्थ्यसे रचित मेरा विश्व रूप इन लौकिक नेत्रोंसे तू उसी प्रकार यथार्थ रूपसे नहीं देख सकेगा जैसे स्वप्न नर अपने स्वप्न नेत्रोंसे स्वप्न दृष्टाके अनिर्वचनीय स्वप्न विश्व रूपको सम्यक रूपसे नहीं देख सकता। इस कारण मैं तुझ जिज्ञासु भक्तको अलौकिक ज्ञानात्मक नेत्र देता हूँ जिससे तू मेरी सदसत विलक्षण अचिन्त्य सामर्थ्य को देख कि मैं ही

अपनी माया द्वारा अखिल प्रपंचका अभि
निमित्तोपादान कारण बन सा जाता हूं।

५:

अनेक वक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥११-१०

संजय धृतराष्ट्रसे अर्जुन द्वारा देखे
भगवान कृष्णके विराट रूपका वर्णन कर
हैं कि भगवानके विराट रूपको अनन्त मु
नेत्रोंसे युक्त तथा अनिर्वचनीय होनेसे आश्च
कराने वाले दर्शनोंसे युक्त, अलौकिक अर्थ
संकल्प रचित अपरिमित आभूषणोंसे तथा दि
शस्त्रोंसे युक्त अर्जुन ने देखा। नटके अने
विचित्र वेषोंको देखकर दर्शकों को आश्चर्य हो
लगता है फिर भगवान कृष्णके मायिक वि

रूपको देखकर अर्जुनका चकित होना स्वाभाविक ही है।

५४

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११-११॥

भगवान कृष्णके विराट रूपका दर्शन करते हुए अर्जुन देख रहे हैं कि भगवानने अपनी योगमायासे माया मात्र अलौकिक पुष्प मालाओंको तथा वस्त्रोंको धारण कर रक्खा है और दिव्य गन्धका अनुलेपन कर रक्खा है। अर्जुनने योगेश्वर भगवान कृष्णके विराट रूप को समस्त आश्चर्योंसे युक्त देखा जो देश काल वस्तुके परिच्छेदसे रहित होनेसे परमार्थ दृष्टिसे नित्य है और सर्वात्मा होनेसे सर्व ओर मुखवाला

है। जैसे रज्जु अपना मायिक स्वरूप स दिखला कर द्रष्टाको स्तब्ध कर देती है इसी प्रकार भगवानने अपने मायिक विराट रूपको दिखलाकर अर्जुनको रोमांचित कर दिया।

५५

अनेक बाहूदर वक्त्र नेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्त रूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं।
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥११-१६॥

अर्जुन भगवान कृष्णके विश्वरूपका दर्श करते हुए भगवानकी स्तुति कर रहे हैं कि जगत रूप जगदीश्वर! आपके शरीरमें अनेक भुजायें उदर, मुख और नेत्र हैं। आपके सर्व अनन्त रूप हैं। मुझे आपका न अन्त दिख लाई देता है, न मध्य दिखलाई देता है और

आदि दिखलाई देता है क्योंकि आप अनादि अनन्त हैं तथा आप विश्वके कर्त्ता और विश्व रूप भी हैं। आप सर्व दृश्यके कारण हैं और आपका कारण कोई नहीं इसलिए आप अनादि हैं। आप सर्वदेशी, अविनाशी तथा विवर्त रूपसे सर्वरूप हैं अतः देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे रहित होनेसे आप अनन्त हैं। जैसे निद्रा द्वारा स्वप्न दृष्टा स्वप्नका कर्ता और स्वप्न रूप है उसी प्रकार माया द्वारा आप जाग्रत जगतके कर्ता और जगत रूप भी हैं।

५६

त्वमादि देवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्त रूप ॥११-३८॥

भगवान कृष्णकी सर्वात्मताका वर्णन क
हुए अर्जुन कह रहे हैं कि हे अनन्त अद्विती
परमात्मन् ! आप जगतके कारण होनेसे आ
स्वयं प्रकाश होनेसे देव, अस्ति भाति प्रियरू
पूर्ण होनेसे पुरुष और सनातन होनेसे पुराण
तथा जगतके लय स्थान हो जैसे तरंगोंका ल
स्थान जल होता है। आप सर्वके ज्ञाता त
ज्ञेय भी हैं। जो ज्ञाता ज्ञेयसे परे ज्ञाता ज्ञेय
अधिष्ठान नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव, निर्वि
निर्द्वैत, आनन्दैक रस परब्रह्म है वह भी आ
ही हैं। जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प, दण्डा
रज्जुसे व्याप्त होते हैं उसी प्रकार समस्त भ्रम
त्मक प्रपंच आपसे व्याप्त हो रहा है। अत
सब आप ही हैं क्योंकि अध्यस्त अधिष्ठान रू
होता है।

५७

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥११-५४॥

भगवान कृष्ण अर्जुनको निमित्त बनाकर जिज्ञासु भक्तोंको अपने निर्विशेष ब्रह्म स्वरूपके साक्षात्कारका साधन बतलाते हुए उपदेश कर रहे हैं कि मेरे परमार्थ स्वरूपका अव्यभिचारी अखंड भक्तिसे शास्त्रों द्वारा संशय रहित बोध हो सकता है तथा साक्षात्कार भी हो सकता है और विदेह मोक्ष भी प्राप्त करनेमें साधक समर्थ हो जाता है क्योंकि ब्रह्म साक्षात्कार होने पर प्रारब्ध क्षय होनेके पश्चात् घट टूटनेपर घटाकाश की भाँति जीव महाकाशरूप ब्रह्म हो जाता है और पुनः शरीर धारण नहीं करता क्योंकि प्रपंचके कारण अज्ञानका अत्यन्ताभाव हो जाता है। जो

अज्ञान रूपी शत्रुको तपानेमें समर्थ है व
परंतप है।

सविशेष विश्वरूप ब्रह्मकी अव्यभिचारि
धारणासे उपासना करना कि मेरे सहित सर्वत्र
है अनन्य भक्ति कहलाती है।

५८

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥१२-३

भगवान कृष्ण ज्ञानी भक्तकी दुर्लभ
बतलाते हुए कह रहे है कि जो मुमुक्षु जिज्ञा
भक्त वाणी, मन तथा बुद्धिके अविषय, अना
अनन्त, अनिर्वचनीय, सर्व व्यापक, कूटस्थ
सदा निर्विकार अथवा माया रूप कूटमें अधिष्ठा
होनेसे नित्य स्थित, निष्क्रिय, एकरस सच्चिदा

नन्द निर्विशेष ब्रह्मकी उपासना करता है वह मुझ निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त होकर पुनः शरीर धारण नहीं करता। अतः तीव्र मुमुक्षुको निर्गुण ब्रह्म की ही उपासना करनी चाहिए। परन्तु निर्गुण ब्रह्मकी उपासना मन्द बुद्धि वालोंको कठिन है। अतः मन्द बुद्धिवालोंको सगुण ब्रह्म की उपासना युक्ततम है। विवेक वैराग्य षट सम्पत्ति मुमुक्षुता चतुष्टय साधनसे सम्पन्न जिज्ञासुओंको विदेह मोक्षके लिए निर्गुण ब्रह्म की उपासना ही युक्ततम है।

५६

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥१२-४॥

भगवान कृष्ण निर्गुण ब्रह्मके उपासकके

सम्बन्धमें बतला रहे हैं कि जिन अक्षरोपासकों संसारमें सतबुद्धि और सुखबुद्धिका परित्याग क देनेके कारण अपनी इन्द्रियोंको विषयोंसे रो लिया है और जो सदा सुख दुःखमें समान रह हैं अर्थात हर्ष विषादसे रहित हो गये हैं औ कृतकृत्य होकर मोह निद्रामें सोये हुए जीवों जगानेमें रत रहते हैं वे नदी समुद्रवत अभे रूपसे मुझको ही प्राप्त होते हैं अर्थात मे स्वरूप ही हो जाते हैं। इस प्रकारके ब्रह्मनि सन्त तो ब्रह्म रूप हैं। उनको युक्ततम अयुक्ततम कुछ भी नहीं कह सकते।

६०

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥१२-१२

भगवान कृष्ण अर्जुनको निमित्त बनाक

श्रद्धालु भक्तोंको उपदेश दे रहे हैं कि श्रवण मनन निदिध्यासन रूप अभ्याससे साक्षात्कारात्मक ज्ञान श्रेष्ठ है क्योंकि अभ्यास हेतु और ज्ञान फल है। परन्तु विपरीत भावनासे युक्त शास्त्री ज्ञानसे विपरीत भावनाका नाशक ध्यान श्रेष्ठ है। परन्तु जो अशुद्ध अन्तःकरणवाले ध्यान करनेमें असमर्थ है उनको ध्यानसे कर्मफलका त्याग श्रेष्ठ है। ईश्वरार्पण बुद्धिसे निष्काम कर्म करनेसे तुरन्त अन्तःकरण शुद्ध होकर सद्गुरुकी कृपासे ज्ञान हो जावेगा और ज्ञान होते ही ज्ञानी उसी प्रकार संसार दुःखोंसे मुक्त हो जाता है जैसे जाग्रतका ज्ञान होते ही जीव स्वप्न दुःखोंसे तुरन्त मुक्त हो जाता है।

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१२-१६॥

भगवान कृष्ण ब्रह्मनिष्ठ सन्तका लक्षण बतलाते हुए उपदेश दे रहे हैं कि शुभ्र सच्चिदानन्द ब्रह्मको ही आत्मा जाननेवाला सन्त देहसे लेकर चिदाभास तक भोग्य, भोग, भोक्ता सर्वको स्वप्नवत मिथ्या जानकर जो मोक्षकी भी कामना नहीं करता क्योंकि. बन्ध मोक्ष चिदाभासकी अवस्थायें हैं। ब्रह्मरूप आत्मा बन्ध मोक्षसे परे निर्द्वैत परमानन्द घन है मलिन देहोंसे घटाकाशवत आत्माको असंग निर्लेप जाननेसे वह पवित्र है। शिष्यको अनेक प्रकारकी परिक्रियाओंसे शीघ्र बोध करानेमें कुशल होनेसे वह दक्ष है। कर्ममें अकर्म दर्शन करनेसे अर्थात आत्माको निष्क्रिय असंग साक्षी जाननेसे वह उदासीन है और पाप पुण्यमें संतप्त नहीं होता क्योंकि देहाभिमान रहित है। वह

सर्व कर्तव्योंसे शून्य कृतकृत्य जीवन्मुक्त भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है क्योंकि वह मेरी आत्माको ही अपनी आत्मा जानता है।

६२

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्यु जरा व्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।१३-८।

भगवान कृष्ण ज्ञानके साधन बतलाते हुए अर्जुनको निमित्त बनाकर जिज्ञासुओंको उपदेश दे रहे हैं कि इन्द्रियोंके लौलिक भोगोंमें सुख बुद्धि और सत बुद्धिका अभाव, अहंकारके हेतु वर्ण, आश्रम, आचार, विद्याकुल, शील आदि के होने परभी उनको तुच्छ और अनात्म धर्म समझकर उनका अहंकार न करना। जन्ममें गर्भवास और योनि द्वारा बाहर निकलना रूप

दोषको देखना तथा मृत्यु दुःखमय है, मरन दुःख है, बुढ़ापा और सब रोग दुख हैं इ प्रकार सबमें दोष देखना तथा अध्यात्म, अधि दैव, अधिभूतके निमित्तसे होने वाले तीन प्रकारके दुःखोंमें दोष देखना। दृश्यमें दो दर्शन वैराग्यका साधन है और वैराग्य बिना किसीको कदापि ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता। इस कारण दोष दर्शन ज्ञान का साधन है।

६३

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥१३-११

आत्मज्ञानमें निष्ठा करना अर्थात घटाकाश घट उपाधि नहीं घट उपहित है उसी प्रकार अन्तःकरणका ज्ञाता मैं आत्मा अन्तःकरण

उपाधि नहीं अन्तःकरण उपहित हूं ऐसी निष्ठा करना, तत्त्वज्ञानके अर्थ मोक्षका विचार करना कि मोक्षका स्वरूप क्या हैं तथा मोक्षका साधन क्या है तथा मोक्ष क्यों आवश्यक है, इस प्रकार मोक्षका विचार करने से मोक्षके साधनों में प्रवृत्ति होगी। मोक्षका स्वरूप न जानने से ही मोक्षके साधन ज्ञानमें प्रवृत्ति नहीं होती। यदि मोक्षके स्वरूपका पता लग जाय कि सर्व दुःखोंके अत्यन्ताभाव तथा परमानन्द की प्राप्ति को मोक्ष कहते हैं। और मोक्षका मुख्य साधन आत्मज्ञान है और अमानित्व, अदम्भित्व, अहिंसा, क्षमा, आर्जव, गुरुभक्ति, शौच, धैर्य, शम, दम. वैराग्य, अनहंकार, जन्म मृत्यु जरा व्याधिमें दोष दर्शन, आसक्ति तथा अहंता ममताका अभाव, समता, अनन्य भक्ति, एकान्त

देशका सेवन करना, कुसंगसे दूर रहना, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, तत्पद और त्वंपदका शोधन आत्मज्ञानके साधन होनेसे ज्ञान कहलाते हैं और उपर्युक्त अमानित्वादि गुणोंसे विपरीत मान बड़ाईकी कामना, दम्भ, हिंसा, क्रोधादि दोष हैं वे सब अज्ञान ही हैं। अतः अज्ञानका सर्वथा त्याग करना चाहिए।

६५

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् । १३-१७ ।

भगवान कृष्ण ब्रह्मका स्वरूप, उसकी प्राप्तिका मुख्य साधन और उसकी उपलब्धिका स्थान बतलाते हुए उपदेश कर रहे हैं कि वह ब्रह्म बाह्य सूर्य आदि और भीतर बुद्धि आदि

ज्योतियोंका प्रकाशक है तथा संसारके बीज अज्ञानसे उसी प्रकार विलक्षण है जैसे स्वप्नके बीज निद्रासे स्वप्न साक्षी विलक्षण है क्योंकि ज्योति स्वरूप है। जिसने जाग्रतका अनुभव किया, जिसने स्वप्न देखा और जो सुखसे सोया वह मैं हूं। अतः आत्मा कार्य कारण प्रपंचसे भिन्न है दोनोंका साक्षी होनेसे। जैसे तप्त लोह पिण्ड अग्नि द्वारा दूसरेको जलाता है उसी प्रकार सूर्य तथा बुद्धि आदि भौतिक ज्योतियों का प्रकाशक स्वयं प्रकाश ब्रह्म है। अतः ब्रह्म चेतन है और जानने योग्य है क्योंकि जीवका वास्तविक स्वरूप ब्रह्म ही है जिसके अज्ञान पर्यन्त जीव चौरासी लक्ष योनियोंमें भ्रमण करता रहता है। जैसे स्वप्न पुरुषको जाग्रतकी प्राप्ति का एक मात्र उपाय जाग्रतका ज्ञान है

उसी प्रकार ब्रह्म प्राप्तिका एकमात्र नियत साध
ज्ञान है। जैसे सूर्यकी उपलब्धिका स्थान दर्प
है उसी प्रकार ब्रह्मकी उपलब्धिका स्थान हृद
हूँ। जैसे सूर्यकान्तमणिमें ही सूर्यका प्रका
अग्नि रूपसे प्रकट होता है उसी प्रकार हृद
अर्थात अन्तःकरणमें ही ब्रह्मका अहं रूपसे
प्राकट्य होता है।

१३. में क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग

६५

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।१३-२२

स्वरूपके अविवेकसे ही पुरुषको संसारकी
प्राप्ति होती है न कि स्वरूपसे। इस आशयसे
पुरुषके स्वरूपका वर्णन भगवान कृष्ण कर रहे
हैं कि शरीर रूपी यज्ञशालामें दश इन्द्रियाँ और

पंच प्राण मिलकर पन्द्रह ऋत्विज है। सोलहवाँ मन यजवान है और सत्तरहवीं बुद्धि यजवानकी स्त्री है। अठारहवाँ सर्वसे परे, समीपस्थ तथा सबकी अपेक्षा अन्तरतम होनेसे पुरुष उपद्रष्टा है। अपने अपने व्यापारमें लगे हुए अन्तःकरण और इन्द्रियोंको उनका साक्षी होकर भी यह पुरुष कभी निवारण नहीं करता और स्पयं प्रवृत्त न होता हुआ भी उनके अनुकूल रहता है। इस कारण इस पुरुषको अनुमन्ता कहते हैं। अविद्यासे अपनेमें आरोपित सम्पूर्ण कार्य कारण प्रपंचको सत्ता स्फूर्ति प्रदान करनेसे यह पुरुष ही भर्ता है। जैसे अन्धकारको सूर्य निगल जाता है उसी प्रकार समस्त कार्य कारण प्रपंच को सम्यक बोध होने पर निगल जानेसे इस पुरुषको भोक्ता भी कहते हैं। अथवा

अविद्यासे सुखी दुखी भासनेसे इस पुरुष
अविद्या पर्यन्त भोक्ता कहा जाता है। सम्पू
जगत एक अंशमें स्थित होनेसे तथा सब
आत्मा होनेसे महा तथा स्वतंत्र और लो
चुम्बकवत सर्व प्रवृत्तियों का हेतु होनेसे ईश्
पुरुषको कहा जाता है। गौणात्मा स्त्री, पु
धनादि तथा मिथ्यात्मा पंचकोशसे विलक्ष
होनेसे पंचकोशोंके साक्षी पुरुषको परमात्मा रू
भी उसी प्रकार कहा जाता है जैसे घटाकाश
महाकाश रूप कहा जाता है। ऐसा सर्व दृश्य
पर पुरुष कहाँ है? इस प्रश्नका समाधा
भगवान कृष्ण कर रहे हैं कि वह पर पुरुष इस
शरीरमें ही आत्मा रूपसे विराजमान है जै
महाकाश घटमें घटाकाश रूपसे विराजमान हो
है। अर्जुन स्थानीय ऐ मुमुक्षुजनो! वही तुम हो

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्म योगेन चापरे ।१३-२४।।

भगवान कृष्ण उत्तम, मध्यम और अधम अधिकारी मुमुक्षुओंको उनके अधिकारके अनुसार साधनोंका वर्णन करते हैं कि मल विक्षेप दोषोंसे रहित विवेक, वैराग्य, षट सम्पति, मुमुक्षुता चतुष्टय साधनसे सम्पन्न तथा श्रवण मनन द्वारा प्रमाणगत, प्रमेयगत संशयसे रहित उत्तम अधिकारी अनात्मा तीनों शरीरों तथा पंचकोशोंका बाध करके पंचकोशातीत अपनी आत्माको ब्रह्मरूपसे और ब्रह्मको आत्मा रूपसे सर्वदा भावना किया करते हैं अर्थात् ब्रह्माकार वृत्तिसे ब्रह्मको आत्म स्वरूपसे देखा करते हैं। परन्तु इस प्रकारके ध्यान करनेमें असमर्थ मध्यम

अधिकारी सांख्य योगके द्वारा आत्मामें आत्माको देखते हैं अर्थात आत्मा और अनात्माका अध्यास निवृत्त करनेके लिये सदा वेदान्तका स्वाध्याय और विचार किया करते हैं। जो विक्षिप्त अन्तःकरण वाले तीसरी श्रेणीके अधिकारी वेदान्तका श्रवण मनन करनेमें असमर्थ हैं वे ईश्वरार्पण बुद्धिसे निष्काम कर्म द्वारा विश्व रूप भगवानकी सेवा द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि और ज्ञान प्राप्तिके क्रमसे आत्मामें आत्माको देखते हैं अर्थात ब्रह्म रूपसे आत्माका साक्षात्कार करते हैं। जैसे कोई अपने मैले कपड़ोंमें साबुन लगा रहा है और जो साबुन लगा चुका है वह कपड़ोंको धो रहा है तथा जो धो चुका है वह अपने कपड़ोंको रंग रहा है। इसी प्रकार तीसरी श्रेणीका अधिकारी अन्तःकरणकी शुद्धि-

के लिए निष्काम कर्म कर रहा है तथा शुद्ध अन्तःकरण वाला द्वितीय श्रेणीका अधिकारी आत्मा अनात्माका अन्योन्याध्यास सांख्य द्वारा दूर कर रहा है। परन्तु जो अध्यास भी दूर कर चुका है वह प्रथम श्रेणीवाला अधिकारी ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा ब्रह्मको आत्मा रूपसे साक्षात्कार कर रहा है। अर्थात जैसे अज्ञानीको देहोंमें स्वाभाविक दृढ़ अभिमान होता है उसी प्रकार वह उत्तम अधिकारी कार्य कारण प्रपंचसे शून्य अनादि अनन्त सच्चिदानन्द ब्रह्ममें आत्मभाव दृढ़ किया करता है।

६७

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥१३-२८॥

भगवान कृष्ण समदर्शनका फल बतलाते

हुए उपदेश दे रहे हैं कि जो सम्यक्दर्
ब्रह्मासे स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण स्थावर जंग
प्राणियोंमें आत्मासे अभिन्न अनादि अनन्त
परमात्माको सर्वाधिष्ठान होनेसे समान व्याप
देखता है वह समदर्शी विषमदर्शी देहाभिमानि
की भाँति अपने द्वारा आपको नष्ट नहीं करता
इससे वह पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता और प
मानन्द रूप ब्रह्मको उसी प्रकार अभेद रूप
प्राप्त हो जाता है जैसे घट फूटनेपर घटाका
महाकाश रूप हो जाता है। इसीको परमग
कहते हैं। जैसे स्वप्न पुरुष स्वप्न देहके न
होनेसे निद्रा दोषसे अपना ही नाश मानता
परन्तु जागनेपर वही जाग्रत पुरुष स्वप्न देह
निद्राजनित भ्रममात्र जानकर उसके जन्म नाश
को अपना जन्म नाश नहीं मानता उसी प्रका

ब्रह्मज्ञान होनेपर ब्रह्मज्ञानी अविद्याजनित भ्रम मात्र देहोंका जन्म और नाश भ्रमरूप जानता है परन्तु अज्ञानी देहोंके जन्म नाशको अपना ही जन्म नाश मानता है। इस कारण ज्ञानी मुक्त हो जाता है परन्तु अज्ञानी बद्ध रहता है।

६८

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥१३-३१॥

आत्मा नित्य तथा अकर्ता अभोक्ता है। इस सिद्धान्तको सिद्ध करनेके लिए भगवान कृष्ण उपदेश दे रहे हैं कि कारणके नाशसे आदिमान कार्यका भी नाश होता है तथा गुणों-के नाशसे सगुण भूतोंका नाश हो जाता है, परन्तु अनादि तथा निर्गुण होनेसे आत्मा

अविनाशी है। मिथ्या आत्मा पंच कोशोंके साक्षी होनेसे क्षेत्रज्ञको ही परमात्मा कहा गया है। अनादि होनेसे परमात्मा अविनाशी है तो अनादि होनेसे प्रकृतिको भी अविनाशी होना चाहिए? इस शंकाका समाधान करते हुए भगवान कृष्ण उपदेश कर रहे हैं कि प्रकृति अनादि तो है परन्तु निर्गुण नहीं है त्रिगुणात्मिका है। इस कारण प्रकृति अनादि होनेपर भी अविनाशी नहीं है परन्तु परमात्मा अनादि तथा निर्गुण होनेसे अविनाशी है। जैसे आकाशका घट अधिकरण नहीं हो सकता अथवा जैसे सूर्यका दर्पण अधिकरण नहीं हो सकता उसी प्रकार अनादि, अनन्त, अद्वितीय परमात्माके अधिकरण विकारी परिच्छिन्न जड़ शरीर नहीं हो सकते। परन्तु जैसे घटमें आकाश-

की तथा सूर्य दर्पणमें सूर्यकी प्रतीति होती है उसी प्रकार कूटस्थ परमात्माकी शरीरमें प्रतीति होती है। अतः शरीरमें स्थित कहा जाता है। जैसे ठूंठमें अध्यस्थ पुरुष ठूंठमें कोई क्रिया या विकार उत्पन्न नहीं कर सकता यद्यपि ठूंठके अज्ञान पर्यन्त अध्यस्त पुरुषमें स्थित रहता है। उसी प्रकार अध्यस्त शरीरमें स्थित होने पर भी अधिष्ठान परमात्मा निष्क्रिय ही रहता है तथा अकर्ता होनेसे भोक्ता भी नहीं हो सकता। कर्ता भोक्तापन रज्जुमें सर्प अथवा स्वप्नकी भाँति अविद्या मात्र है।

६९

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ १३-३२॥

भगवान कृष्ण आत्मामें कर्तृत्व भोक्तृत्व

भ्रमकी निवृत्तिके लिए दृष्टान्त सहित प्रतिपादन करते हैं कि जैसे आकाश कीचड़ आदिमें सर्वत्र व्याप्त हुआ भी सूक्ष्म अर्थात असंग होनेसे किसी पदार्थसे सम्बन्ध नहीं करता उसी प्रकार उत्तम व अधम देहोंमें स्थित आत्मा भी देहके गुण दोषोंसे लिप्त नहीं होता क्योंकि सम्पूर्ण देह अध्यस्त हैं और आत्मा अधिष्ठान है अतः अध्यस्त उपाधि रूप देहोंसे अधिष्ठान उपहित आत्मा विकारी नहीं हो सकता। सम सत्ता वाला जब घट उपहित आकाश अपनी उपाधि घटसे लिपायमान नहीं होता तब विषम सत्ता वाला कार्य कारण उपहित अधिष्ठान परमात्मा अपनी अध्यस्त देह रूप उपाधियों कैसे लिपायमान हो सकता है ? अर्थात नहीं हो सकता, उपहित और अधिष्ठान होने से।

७०

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥१३-३३॥

सम्पूर्ण क्षेत्रोंका परम प्रकाशक क्षेत्रज्ञ एक और निर्लेप है यह बतलानेके लिए भगवान कृष्ण फिर उपदेश दे रहे हैं कि जैसे एक ही सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको निर्लेप रहते हुए प्रकाशित किया करता है उसी प्रकार अविद्यामात्र प्रकाश्य, जड़ अध्यस्त समस्त देहों तथा पंच कोशोंको स्वयंप्रकाश सजातीय विजातीय स्वगत भेदसे रहित अधिष्ठान आत्मा प्रकाशित करता है अर्थात सत्ता स्फूर्ति देता है। जैसे सूर्यका साक्षात्कार रात्रि तथा रात्रिके कार्य अन्धकार का निवर्तक है उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ आत्माके परमार्थ स्वरूपका साक्षात्कार अज्ञान

तथा अज्ञानके कार्य दुःख रूप सम्पूर्ण प्रपं
का निवर्तक है। जैसे प्रकाशक होनेसे सू
निर्लेप है उसी प्रकार साक्षी होनेसे आत्मा दृश
से निर्लेप है क्योंकि दृष्टा दृश्यसे भिन्न होत
है और दृष्टा दृश्यका प्रकाशक होता है, दृश
दृष्टाका प्रकाशक नहीं होता तथा दृष्टा दृश्य
विकारोंसे विकारी भी नहीं होता। जैसे सू
एक होते हुए भी दर्पणोंमें अनेक सा प्रती
होता है उसी प्रकार सच्चिदानन्द आत्मा ए
होने पर भी नाना अन्तःकरणोंमें प्रति बिम्बि
होकर अनेक सा प्रतीत हो रहा है। जैसे सूर्य
अनेक प्रतिबिम्ब होने पर भी सूर्य अनेक न
है एक ही है उसी प्रकार नाना चिदाभासों
होने पर भी अपना स्वरूप चिदात्मा एक ही
अनेक नहीं है। ऐसा निश्चय करना चाहिए।

१४. गुणत्रय विभाग योग

७१

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥१४-१॥

भगवान् कृष्ण तेरहवें अध्यायमें क्षेत्रसे भिन्न क्षेत्रज्ञको ब्रह्मरूप बतला चुके हैं। मोक्ष-दायक होनेसे उसी परम् ज्ञानको जो यज्ञादि ज्ञेय वस्तु विषयक ज्ञानोंसे उत्तम है, भगवान् परम् श्रद्धालु शिष्य अर्जुनको फिरसे दृढ़ करने के लिए सुना रहे हैं। अध्यस्त गुणों और उनके कार्योंके सम्बन्धके अभाव हुए बिना जीव को दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता। इस कारण त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके गुण कौनसे हैं? वे कैसे बाँधते हैं? उनसे कैसे छुटकारा होता है? कर्ता कौन है? इन सब रहस्योंको भगवान् भलीभाँति समझानेकी प्रतिज्ञा कर रहे हैं जिस

ज्ञानको पाकर शुक आदि मुनि त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे मुक्त होकर विदेह मुक्ति रूप परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं।

अतः सिद्ध हुआ कि ज्ञानसे मोक्ष होनेके कारण बन्धन अज्ञानकृत है और वह ज्ञानके बिना उसी प्रकार निवृत्त नहीं हो सकता जैसे सूर्य बिना रात्रि निवृत्त नहीं हो सकती।

७२

इदं ज्ञामुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥१४-२॥

भगवान् कृष्ण ज्ञानका फल वर्णन करते हुए उपदेश दे रहे हैं कि संशय विपरीत भावना से रहित दृढ़ अपरोक्ष ज्ञानीको मुख्य तीन फलों की प्राप्ति होती है। पहला ज्ञानका फल यह है

कि जैसे अज्ञानीको देहमें आत्मभाव दृढ़ होता है उसी प्रकार ज्ञान होनेपर तत्वदर्शीको शुभ्र सच्चिदानन्द ब्रह्ममें आत्मभाव दृढ़ हो जाता है। दूसरा ज्ञानका फल यह है कि ज्ञानी शरीर के प्रारब्धपर्यन्त प्रलयको अथवा भारीसे भारी दुःखोंको स्वप्नवत् मिथ्या निश्चय करके अपने परमार्थ स्वरूप विभु आत्मामें उनसे कोई विकार उसी प्रकार नहीं देखता है जैसे स्वप्नकी प्रलयसे जाग्रतमें किसी प्रकारकी हानि नहीं देखी जाती है। तीसरा ज्ञानका फल यह है कि सृष्टिके आदिमें जैसा सारूप्य आदि मुक्तिको प्राप्त हुए पुरुषोंका जन्म हो सकता है उस प्रकार ब्रह्म वितका जन्म नहीं हो सकता, क्योंकि जन्मकी कारण उसकी अविद्याका अत्यन्ताभाव हो जाता है। जैसे निद्राके अभाव होनेपर स्वप्नमें

जन्म नहीं हो सकता उसी प्रकार अविद्याके नाश होनेपर पुनर्जन्म नहीं हो सकता, क्योंकि जाग्रत जगत भी वास्तवमें ब्रह्मके अज्ञानसे उत्पन्न हुआ स्वप्न है। १ - चेतनता २ - बोधशक्ति ३ - उत्कर्ष

७३

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥१४-११॥

भगवान् कृष्ण वृद्धियुक्त सत्त्वगुणके चिन्ह कथन करते हुए उपदेश दे रहे हैं कि जैसे धुआँ देखकर अग्निका अनुमान कर लिया जाता है उसी प्रकार निश्चित चिन्होंको देखकर गुणोंको पहिचाना जा सकता है। जिस समय जीवके भोगायतन इस शरीरमें समस्त द्वारोंके मध्य अर्थात् आत्माकी उपलब्धिके द्वारभूत

अन्तःकरण तथा त्वचा, चक्षु, श्रोत्र, जिह्वा और नासिकामें संशय विपर्यय रहित बोध उत्पन्न होता है उस समय सत्वगुणकी वृद्धि समझनी चाहिए। अतः संशय विपर्ययसे युक्त प्राणी सत्वगुणी नहीं कहे जा सकते। सत्वगुणी पुरुषको आत्मा अथवा अनात्मा सम्बन्धी संशय तथा विपरीत भावना नहीं होती। जैसे एक वर्ष का बालक हीरा, छाया और प्रतिबिम्बमें देखते हुए संशय और विपरीत भावना रखता है तथा उसका जौहरी पिता हीरा, छाया और प्रतिबिम्ब को संशयकी विपरीत भावनासे रहित यथार्थ रूपसे देखता है उसी प्रकार सत्वगुणी पुरुषको अपने आत्मारूपी हीराका तथा छाया और प्रतिबिम्बकी भाँति सम्पूर्ण कार्य कारण प्रपञ्च का ज्योंका त्यों सम्यक् बोध होता है और कर्म

विकर्म अकर्मका भी सम्यक बोध होता है परन्तु रजोगुणी तथा तमोगुणीको सब विषयोंमें संशय तथा विपरीत भावना रहती है।

अतः जिस समय किसी विषयके ज्ञानमें संशय विपरीत भावना न हो उसी समय सत्व-गुणकी वृद्धि समझना चाहिये।

जैसे रस्सीको रस्सी समझनेवाला सत्व-गुणी है, यह क्या है इस प्रकारकी संशयवाला रजोगुणी है तथा यह सर्प है इस प्रकारका विपरीत निश्चय करनेवाला तमोगुणी है इसी प्रकार धर्म-अधर्म, सत्-असत, जीव-ईश्वर, माया-जगत तथा बंध-मोक्षके यथार्थ स्वरूपका ज्ञाता सत्वगुणी है, इसमें संशय रखनेवाला रजोगुणी है और विपरीत भावना रखनेवाला तमोगुणी है। अतः सत्वगुणी बनकर यथार्थ ज्ञान रखना चाहिये।

त्रिगुणातीत का लक्षण १२ से २५

७४

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥१४।२२॥

भगवान कृष्ण त्रिगुणातीत पुरुषके स्व-संवेद्य लक्षण बतलाते हुए उपदेश दे रहे हैं कि निर्गुण ब्रह्मको आत्मा रूपसे साक्षात्कार करनेवाला त्रिगुणातीत, ब्रह्मदर्शी सत्वगुणके कार्य प्रकाश, रजोगुणके कार्य प्रवृत्ति और तमोगुणके कार्य मोहके प्राप्त होनेपर इनको स्वप्नवत भ्रम-मात्र जाननेके कारण इनसे द्वेष नहीं करता और इनके निवृत्त होनेपर अपने अन्दर कमीका अनुभव करके इनकी आकाँक्षा नहीं करता क्योंकि तीनों गुण अध्यस्त होनेसे अधिष्ठान आत्माका हानि लाभ करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। अतः त्रिगुणातीत पुरुष अपने सर्वाधिष्ठान सच्चिदा-

१ - परब्रह्म परमात्मा के ज्ञानद्वारा

हो ... भाव से स्थित
होना है - ब्रह्मरूप अग्नि में यज्ञ -

नन्द स्वरूपको तीनों गुणों व उनके कार्योंसे असंग, निर्विकार, निर्लेप जानता है। परन्तु तीनों गुणोंमें आसक्त देहाभिमानी हानि या लाभ मानकर गुणोंके कार्योंकी प्रवृत्ति निवृत्तिमें कभी राग किया करते हैं और कभी द्वेष किया करते हैं। त्रिगुणातीत पुरुष तीनों गुणोंका अपने अद्वितीय निरुपाधिक परमार्थ स्वरूपमें सूर्यमें अन्धकारकी भाँति अत्यन्ताभाव देखता है और व्यावहारिक सौपाधिक स्वरूपमें भी तीनों गुणोंसे कोई क्षोभ नहीं देखता। जैसे जलके हलन चलनसे सूर्यका प्रतिबिम्ब भी चंचल नहीं हो सकता क्योंकि बिम्बके चंचल होनेपर ही प्रतिबिम्ब चंचल हो सकता है उसी प्रकार चिदाभास भी निर्गुण निर्दोष है क्योंकि बिम्ब चेतन निर्गुण निर्दोष है। प्रकाशरूप गुण

द्वारा भज ... को हवन करता है

और प्रवृत्ति तथा मोहरूप दोष त्रिगुणात्मक उपाधिके ही धर्म-विकार हैं, चिदात्मा अथवा चिदाभासके भी नहीं। अतः त्रिगुणातीत ज्ञानी त्रिगुणात्मक प्रपंचसे निर्भय तथा अज्ञानी भय-युक्त रहता है।

७५

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥१४।२३॥

भगवान कृष्ण त्रिगुणातीत पुरुषके स्व-संवेद्य लक्षणोंके साथ साथ परसंवेद्य लक्षणोंका भी वर्णन करते हुए उपदेश दे रहे हैं कि सबका साक्षी होनेसे ब्रह्मवित उदासीनवत सदा असंग रूपसे स्थित रहता है और मिथ्या गुणोंके कार्य सुख दुःखादिसे उसी प्रकार क्षोभको प्राप्त नहीं

होता जैसे मृगजलकी बाढ़से सुमेरु पर्वत चलायमान नहीं होता। जैसे स्वप्नके सम्पूर्ण व्यवहारों में निद्रा ही निद्रामें वर्त रही है तथा स्वप्न साक्षी असंग निर्विकार है उसी प्रकार तत्वज्ञानीकी दृष्टिमें समस्त त्रिगुणात्मक शरीर मन इन्द्रियोंके व्यापारोंमें गुण ही गुणमें वर्त रहे हैं क्योंकि मन इन्द्रियाँ भी गुणोंके परिणाम हैं और उनके विषय भी गुणोंके परिणाम हैं। अतः गुण रूप मन इन्द्रियाँ गुणरूप विषयोंमें वर्त रही हैं ऐसा निश्चयवाला आत्मज्ञ अपने स्वरूपमें स्थित हुआ गुणोंसे विचलित नहीं होता।

७६

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥१४।२४॥

भगवान कृष्ण त्रिगुणातीत जीवन्मुक्तके परसंवेद्य लक्षणोंका भी वर्णन करते हुए उपदेश दे रहे हैं कि सर्वाधिष्ठान निर्गुण परब्रह्मको ही अपनी आत्मा जाननेवाला परमार्थदर्शी पुरुष सुख दुःख दोनोंको स्वप्नवत मिथ्या जानता है और अपने स्वरूपको दोनोंका साक्षी अधिष्ठान जानता है तथा सुख दुःख दोनोंको अनात्माके धर्म या विकार समझता है। अतः उसकी दृष्टिमें सुख दुःख दोनों समान हैं। जैसे जागनेपर स्वप्नका अभिमानी स्वप्नका अभिमान छोड़कर जाग्रतका अभिमान करने लगता है उसी प्रकार अज्ञान निद्रासे जागनेपर तत्वज्ञानी निज स्वरूप निर्गुण ब्रह्ममें स्थित हो जाता है और तीनों देहोंको स्वप्नवत कल्पित समझकर उनका अभिमान छोड़ देता है। उस ब्रह्मनिष्ठकी

दृष्टिमें मिट्टी, पत्थर, सोना, प्रिय अप्रिय तथा निन्दा स्तुति अविद्या जनित भ्रममात्र होनेसे सब तुच्छ हो जाते हैं क्योंकि वह देह दृश्यको छायाकी भाँति अपनेसे पृथक मिथ्या जानकर उनमें अहंता ममतासे रहित हो जाता है। जैसे छायाका आदर निरादर करनेसे कोई अपना आदर निरादर नहीं मानता उसी प्रकार देहाभिमानसे शून्य त्रिगुणातीत देहकी निन्दा स्तुतिको अपनी निन्दा स्तुति नहीं मानता। अतः वह स्तुति होनेपर हर्षित नहीं होता और निन्दा होनेपर विषाद नहीं करता।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥ १५।४॥

भगवान कृष्ण मुमुक्षु अर्जुनको उपदेश दे रहे हैं कि मल, विक्षेप रहित तथा विवेक,वैराग्य, षट सम्पत्ति मुमुक्षता, चतुष्टय साधन सम्पन्न होनेके पश्चात मुमुक्षुको प्राप्त करने योग्य सर्वाधिष्ठान सच्चिदानन्द सर्वात्मा ब्रह्मकी खोज करनी चाहिए। अर्थात ईश्वरके समान श्रद्धा रखकर सद्गुरु देवके सदा अनुकूल रहते हुए उनसे वेदान्त श्रवण करना चाहिए तथा मनन निदिध्यान भी करना चाहिए। जैसे मछली केवल जलकी शरण लेती है इसी प्रकार अनन्य प्रेमसे सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह और विजातीय वृत्तियोंका तिरस्कार रूप स्वस्वरूपानुसन्धान ही उस जगतके कारण परमात्माकी शरण लेना है जिससे स्वप्नवत मायारचित अनादि कालीन संसार वृक्षकी प्रवृत्ति बाजीगरकी मायाके समान

१- परमात्मा के स्वरूप में निरन्तर स्थिति जिसकी

विस्तारको प्राप्त हुई है और जिसको प्राप्त होकर जीव संसारमें फिर नहीं लौटता जैसे जाग जाने पर जाग्रत पुरुष जाग्रतके पैरोंसे स्वप्नमें चाहने पर भी वापिस नहीं जा सकता है क्योंकि स्वप्नवत संसारकी कारण निद्रारूप मूल-अविद्या का अत्यन्त नाश हो जाता है ।

७८

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ १५-५ ॥

जैसे निद्रा स्वप्नदेह दृश्यकी अनिर्वचनीय उत्पत्ति करती है और स्वप्नदेहमें अहंभाव और स्वप्न दृश्यमें ममभाव तथा सतबुद्धि सुखबुद्धि उत्पन्न करती है उसी प्रकार निज स्वरूप सच्चि-

दानन्द ब्रह्मका अज्ञान जाग्रतदेह दृश्यको सदसत विलक्षण उत्पन्न भी करता है और मोहित भी करता है अर्थात अहंता ममता तथा सतबुद्धि सुखबुद्धि भी कराता है। अज्ञानमें अनिर्वचनीय जगतके उत्पन्न करने की शक्तिको विक्षेप शक्ति और मोहित करनेकी शक्तिको आवरण शक्ति कहते हैं। इस आवरण शक्तिको ही मोह कहते हैं जिसके कारण ही मिथ्या देह दृश्य में अहंता ममता और सत्बुद्धि सुखबुद्धि हो जाती है। जैसे जाग्रतका ज्ञान होते ही निद्राका तथा निद्राजनित स्वप्नके देह दृश्यमें अहंता ममताका भी नाश हो जाता है उसी प्रकार ब्रह्म ज्ञान होते ही आवरण शक्तिरूप मोह तथा मोह जनित अनात्मामें आत्माभिमान नष्ट हो जाता है। ज्ञानी तो सभी अपनेको कहते हैं

परन्तु भगवान कृष्ण उस ब्रह्मज्ञानीके लक्षण बतला रहे हैं जो प्रारब्ध क्षय होने पर पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करता तथा जैसे घट फूटने पर घटाकाश महाकाशरूपसे स्थित हो जाता है उसी प्रकार प्रारब्ध नाश होने पर जो ब्रह्मरूपसे स्थित हो जाता है।

श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा तत्पद त्वंपदके शोधन द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार होने पर मान और मोह अर्थात देहाभिमान तथा आवरण रूप अविद्यासे जो रहित हो गया है तथा विषयासक्ति तथा ममतारूप दोष जीत लिया है जिसने और जो सदा ब्रह्ममें ही सहज निष्ठा रखता है तथा स्वयं परमानन्दरूप होनेसे जो सुखकी अभिलाषासे रहित है और सुख दुःखादि द्वन्द्वोंको जिसने मिथ्या निश्चय कर लिया है

वह अविद्या रहित ज्ञानी विदेह मोक्षको प्राप्त होता है। अमायिक ब्रह्म स्वरूपमें स्थिति ही परमधाम अथवा अविनाशी परमपदकी प्राप्ति है।

७६

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥१५-६॥

भगवान कृष्ण जीवन्मुक्त पुरुषों द्वारा प्राप्त होने योग्य अपने परमधामके विशेषणोंका वर्णन करते हुए उपदेश दे रहे हैं कि मेरे परम धामको अर्थात प्रकाशक निर्गुण ब्रह्म स्वरूप को अदृश्य, अगोचर, स्वयंप्रकाश, अप्रमेय तथा अभौतिक होनेसे नेत्रके देवता सूर्य, मनके देवता चन्द्र तथा वाणीके देवता अग्नि प्रकाशित नहीं कर सकते फिर नेत्रादि इन्द्रियाँ, मन

तथा वाणी कैसे प्रकाश कर सकते हैं क्योंकि मनादि समस्त कार्य कारण प्रपंच मुझ स्वयं प्रकाश ब्रह्मसे उसी प्रकार प्रकाशित हो रहे हैं जैसे स्वप्नके सूर्यादि स्वप्न साक्षीसे प्रकाशित होते हैं अथवा सीपीमें आरोपित चाँदी सीपीसे प्रकाशित होती है। जिस प्रकार निद्राके अभाव में जाग्रतको प्राप्त हुआ पुरुष स्वप्न संसारमें नहीं लौट सकता उसी प्रकार मेरा वह परमार्थ स्वरूप परमधाम है जिसको प्राप्त होकर संसारसे मुक्त का पुनर्जन्म नहीं हो सकता।

८०

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥१५-७॥

भगवान कृष्ण परमधामको प्राप्त मुक्त पुरुषोंके न लौटनेका कारण बतला रहे हैं कि

संसारमें जिसको जीव अर्थात् क्षेत्रज्ञ कहते हैं वह जल तरंग अथवा घटाकाश महाकाशवत मेरा ही अंश है अर्थात् सौपाधिक स्वरूप है। अतः जैसे घट फूटने पर घटाकाश महाकाशरूपसे अचल स्थित हो जाता है उसी प्रकार अविद्या के नष्ट होने पर जीव ब्रह्म रूपसे स्थित हो जाता है। परन्तु अविद्या उपाधि पर्यन्त जीवको एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीरोंकी प्राप्ति उसी प्रकार होती रहती है जैसे निद्रापर्यन्त जीव स्वप्नके शरीरोंको धारण करता रहता है। अज्ञानी जीव प्रारब्ध समाप्त होने पर स्थूल शरीर छोड़ते समय अपने-अपने गोलकरूप प्रकृतियोंमें स्थित पांच ज्ञानेन्द्रियों तथा मनको उसी प्रकार आकर्षित करता है जैसे रेलके डिब्बेसे उतरते समय यात्री अपने सामानको साथ ले जानेके लिए उठा लेता है।

१-विचार के द्वारा बुद्धि में रहने वाले संशय विपर्यय आदि दोषों को हटाने का नाम अपोहन है

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥१५-१५॥

भगवान कृष्ण अपनी सर्वरूपताका कथन करते हुए उपदेश दे रहे हैं कि जैसे सर्व घटोंमें मिट्टी तथा सर्व भूषणोंमें स्वर्ण स्थित है उसी प्रकार मैं समस्त प्राणियोंका आत्मा होकर उनके हृदयमें स्थित हूँ। जैसे एक ही अग्नि सर्व कोयलोंमें अथवा एक ही बिजली सब तारोंमें प्रविष्ट हो जाती है उसी प्रकार मैं परमात्मा सबके अन्तःकरणोंमें क्षेत्रज्ञ रूपसे प्रविष्ट होकर स्थित हूँ। अतः मुमुक्षुओंको सर्वत्र ब्रह्म बुद्धि करना चाहिये क्योंकि सम्पूर्ण प्राणी वर्ग में ही

हूँ। मुझ परमेश्वरसे ही अनुभव, स्मृति, तथा उनका लोप भी होता है अर्थात् मैं ही ज्ञान अज्ञान तथा स्मृतिका प्रकाशक तथा आधार हूँ। चारो वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ क्योंकि मुझ सर्वाधिष्ठान ब्रह्मको जाननेसे ही सर्व दुःखों का अत्यन्ताभाव और परमानन्दकी प्राप्ति होती है। मैं ही वेदान्तका कर्ता हूँ और ब्रह्म वेत्ता भी मैं ही हूँ। अर्थात मूढ़जनोंको भी कम से कम ब्रह्मविद्याके उपदेशक सन्तोंमें तो ईश्वर बुद्धि अवश्य करना चाहिये नहीं तो उनके ज्ञान प्राप्ति असम्भव हो जावेगी।

> अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
> दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥१६-१॥

सर्व दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति तथा पर-

मानन्दकी प्राप्ति रूप मोक्षके साधन छब्बीस दैवी गुणोंका वर्णन करते हुए भगवान कृष्ण उपदेश दे रहे हैं। १—निर्भयता अर्थात् आत्माको अनादि अनन्त अखंड जानकर अविद्या जनित होनेसे प्रलयसे भी भय न करना तथा सर्वात्मा होनेसे दूसरोंको भी भय न देना बल्कि आत्म-ज्ञान द्वारा निर्भय करना। २–तमोगुण तथा रजोगुण रूप मल विक्षेप आवरणका तथा विषयासक्ति, मन्द बुद्धि, कुतर्क, दुराग्रह और संशय विपर्यय ज्ञानके प्रतिबन्धक दोषोंका अन्तःकरण में अभाव होना रूप अन्तःकरणकी शुद्धि। ३—ज्ञानयोगमें व्यवस्थिति अर्थात श्रवण मनन निदिध्यासनमें तत्परता। ये तीन दैवी गुण केवल सांख्य योगीके तथा शेष लक्षण कर्म योगीके भी समझना चाहिए। ४—

सात्विक दान अर्थात पात्रको श्रद्धा पूर्वक यथा शक्ति धन, अन्न आदि पदार्थोंका निष्काम भावसे समर्पण करना। ५—दम अर्थात इन्द्रियों रूपी घोड़ोंका बुद्धि रूपी सारथीके वशमें होना। ६—अग्नि होत्र आदि श्रौत यज्ञ करना। ७—ब्रह्म यज्ञ रूप स्वाध्याय आदि स्मार्त पंच महा यज्ञ करना। ८—शारीरिक, वाचिक, मानसिक सात्विक तप करना। ९—सरलता अर्थात सदा सीधापन तथा कुटिलताका सदा अभाव होना।

८३

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥१६-२॥

भगवान कृष्ण मोक्षके साधन २६ दैवी-गुणोंका वर्णन करते हुए इस श्लोकमें दसवेंसे

बीस तक दैवी सम्पत्तियोंका उपदेश दे रहे हैं। १०—शरीर मन वाणीसे किसीका अनहित न करना। ११—प्रिय हितकारी यथार्थ भाषण करना। १२—ताड़ित, अपमानित होने पर भी द्वेष उत्पन्न न होना। १३—कर्तापनका अभिमान तथा कर्म फलका त्याग करना। १४—शान्ति अर्थात् मनमें चिन्ताओंका अभाव होना। १५—चुगली न करना अर्थात परोक्षमें किसीकी बुराई न करना। १६—दीन दुखियों पर कृपा करना। १७—विषयासक्ति न होना। १८—चित्त शीतल रहना तथा क्रूरताका सदा अभाव होना। १९—पाप करनेमें लोक लज्जा होना। २०—शरीर मन इन्द्रियोंकी व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव होना।

८४

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥१६—३॥

भगवान कृष्ण मोक्षके साधन बीस दैवी-गुणोंका वर्णन कर लेनेके पश्चात् शेष छः दैवी गुणोंका भी उपदेश अर्जुनको निमित्त बनाकर मुमुक्षुओंको दे रहे हैं। २१—तेज अर्थात श्रेष्ठ पुरुषोंकी वह दिव्य शक्ति जिसके कारण उनके सत्संग से बाल्मीक सरीखे विषयासक्त पामर क्रूर मनुष्य भी प्रभावित होकर ईश्वर भक्त हो जाते हैं। अथवा तेज उस दिव्य प्रकाशको कहते हैं जिसके प्रकट होने पर अज्ञान असम्भावना तथा विपरीत भावनाका उसी प्रकार अत्यन्ताभाव हो जाता है जैसे सूर्यके उदय होने पर रात्रिका अभाव हो जाता है। २२—बदला

लेनेकी शक्ति होनेपर भी अपराधीको न्यायो-
चित दण्ड देने दिलानेकी इच्छा भी न होना
क्योंकि सुख-दुःख मिलनेमें निज कृत कर्म
प्रधान कारण हैं तथा अन्य हेतु निमित्त मात्र
हैं। २३-धैर्य अर्थात भारी-से-भारी दुःखमें भी
दुःखको पापनाशक समझकर विचलित न होना
तथा बड़े-से-बड़े प्रलोभनसे भी अपने धर्मका
त्याग न करना। २४-मिट्टी और जलसे तथा
धर्माचारणसे शरीरको पवित्र रखना और पाप
कर्मोंसे मैला न करना। २५-अद्रोह अर्थात
अपने अपकारी शत्रुसे बैर भावका अत्यन्ताभाव
होना क्योंकि शत्रु मित्रके वेषमें अपना इष्ट
परमात्मा ही छिपा हुआ है जैसे सीधी टेढ़ी
तरंगोंमें एक जल छिपा होता है। २६-मान
बड़ाई, प्रतिष्ठा और पूजा आदिकी इच्छाका

१७-८

अभाव होना। ये सब छब्बीस दैवी गुण दैवी सम्पदाको प्राप्त हुए पुण्यात्मा मोक्षके अधिकारी पुरुषके लक्षण हैं।

१८. में श्रद्धा त्रिविभाग योग ८५ म-८

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्। /
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१७।१४॥

भगवान कृष्ण शरीरका तप वर्णन करते हुए उपदेश दे रहे हैं कि देव अर्थात् ईश्वरकी व सूर्य, अग्नि आदि देवोंकी, द्विज अर्थात् ब्राह्मणों को, गुरु अर्थात आचार्य, माता पिता आदि बड़ोंकी तथा प्राज्ञ अर्थात किसी भी जातिवाले शरीरधारी ब्रह्मवेत्ताओं की श्रद्धापूर्वक सेवा पूजा करना तथा शौच अर्थात शरीरकी पवित्रता, आर्जव अर्थात छल कपट रहित

दूसरेके साथ सीधा होकर व्यवहार करना, ब्रह्मचर्य अर्थात स्त्री भोगसे रहित होना, अहिंसा अर्थात किसीको कष्ट न देना शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है।

८६

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।१७।१५

शारीरिक तप वर्णन करनेके पश्चात् भगवान कृष्ण वाणीके तपका उपदेश दे हैं कि निन्दा चुगलीसे रहित किसीको भी दुःख न देनेवाले प्रिय हितकारी अर्थात प्रेम युक्त मीठे कल्याणदायक यथार्थ वचन बोलना तथ वेद शास्त्र पुराण, तथा वेद पुराण सम्मत गीता रामायण आदिके पठनका अभ्यास करना वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

८७

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।। १७–१६ ।।

शारीरिक और वाणी सम्बन्धी तप बतला ए अब भगवान कृष्ण मन सम्बन्धी तपका देश कर रहे हैं क्योंकि जैसे सोनाको तपानेसे ना शुद्ध हो जाता है उसी प्रकार तप करनेसे रीर मन इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाती हैं। मनका साद अर्थात राग द्वेष रहित होकर मनको तुष्ट रहना, सौम्यत्व अर्थात मनका सदा दा शीतल रहना तथा दूसरोंका हित चाहना, न अर्थात मनन ध्यान परायण रहना तथा न्तःकरण उसी प्रकार वशमें होना जैसे जलीसे चलने वाला पंखा चलाने वालेके में होता है। ये सब मन सम्बन्धी तप हैं।

८८

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥१७-२०

भगवान कृष्ण सात्विक दानका लक्ष
बतलाते हुए उपदेश दे रहे हैं कि जैसे बा
का जल देना कर्तव्य है उसी प्रकार दान दे
कर्तव्य है ऐसे भावसे लोक परलोकके फल
इच्छासे रहित होकर देशानुकूल, समयानु
और पात्रानुकूल प्रसन्नता पूर्वक सात्विक श्र
अनुपकारी व्यक्तिको जो दान ईश्वरार्थ दि
जाता है उसको सात्विक दान कहते हैं।
धर्मात्मा ऋणी कर्तव्य समझकर प्रसन्नता पू
ऋण चुकाते हैं अथवा खजांची व पोस्ट
कर्तव्य समझकर रुपया पात्रोंको बाँटते हैं
प्रकार निष्काम दानी अभिमान रहित हो

ारी सम्पत्ति भगवानकी मानकर और अपने
ो भगवानका मैनेजर मानकर पात्रोंको सात्विक
ान किया करते हैं। परन्तु दान न करने वाले
वयं भोगों को भोगनेमें आसक्त स्वार्थरत
यक्तियोंको भी ऋण चुकाना पड़ता है जैसे बेई-
ान ऋणी कुर्की होने पर ऋण चुकाया करता
। उन लोभी विषयासक्त पुरुषोंको दूसरे जन्मोंमें
ग, बैल, घोड़े आदि शरीर धारण करके ऋण
ानेके लिए बाध्य होना पड़ता है। वृत्त, पशुभी
रोंकी सेवामें रत हैं परन्तु उनको कुर्क होने पर
। मड़ी हड्डी तक दान करना पड़ता है। राजस
मस दान समुद्रमें वर्षाके समान अथवा बिना
ी हुई भूमिमें बे समय बीज बोनेके समान
शेष लाभप्रद नहीं है। यद्यपि चोर डाकुओंसे
सी तामसी दानीभी अच्छे हैं जैसे न बरसने

-ध्यानयोग ... ग्रन्थ २ ... अध्याय
... के आदि काल में
रचे गये हैं

वाले बिना पानीके बादलोंसे खेतोंमें न बरसने...
मरु भूमिमें बरसने वाले बादल भी अच्छे ...
अतः परिस्थितिके अनुसार यथाशक्ति सात्त्विक...
दान देना मनुष्यका परम कर्तव्य है।

नाम ... कहा

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥१७-२३

भगवान कृष्ण राजस तामस यज्ञ दान...
को भी सात्त्विक बनानेके लिए परमात्माके...
नामोंका उपदेश दे रहे हैं जो समस्त पापों...
नाश करनेमें उसी प्रकार समर्थ हैं जैसे अ...
रुईको जलानेमें समर्थ है। सर्व पाप नाशक...
तत् और सत् ये तीन प्रकारके सच्चिदा...
पर ब्रह्मके नाम हैं। सृष्टिके आदि कालमें...

तीनों नामोंसे ब्राह्मण आदि सम्पूर्ण प्रजा, चारों वेद और यज्ञ तप दानादि समस्त शास्त्र सहित कर्मों की उत्पत्ति हुई। अतः पवित्र करने वाले ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञादि कर्मोंको उत्पन्न करने वाले सच्चिदानन्द परमात्माके ॐ तत् और सत् नामोंकी पवित्रता अकथनीय अपार असीम समझनी चाहिए।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदान तपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७-२४ ॥

भगवान कृष्ण ॐ, तत् और सत् तीनों नामोंमें प्रत्येककी प्रशस्ता वर्णन करते हुए पहले ॐ की प्रशस्ताका उपदेश दे रहे हैं। ये तीनों नाम ब्रह्मके वाचक तथा वेदादिके जनक

होनेके कारण अत्यन्त पवित्र हैं। अतः ॐ उच्चारण करके ही वदिक पुरुषोंकी शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ, दान रूप क्रियाएँ आरम्भ होती हैं। यज्ञादिके आरम्भमें ॐके उच्चारण सब क्रियाएँ सद्गुण सम्पन्न, परम पवि और सब अंगोंसे पूर्ण हो जाती हैं। पारससे स्पर्श करनेपर लोहा सोना हो जाता है अथवा जमुना आदि नदियाँ ही क्या नाले गंगामें मिलकर पवित्र गंगा बन जाते हैं उसी प्रकार मन्त्र आदिके लोपसे किये गए यज्ञादि वैगुण्यके प्राप्त होनेपर भी ॐके कथनसे सम्पूर्ण कर्म सद्गुण सम्पन्न और परम पवित्र जाते हैं।

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञ तपः क्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥१७-२

१-सतरज़ीन=ऐसे २·यह परमात्मा का ना

भगवान कृष्ण तत् शब्दका प्रयोग बत- ४·स
ते हैं कि ब्रह्मके तत् नामका उच्चारण करके भाव
व क्रियाएँ ब्रह्म रूप हैं ऐसे निश्चय पूर्वक ५·ओ
र्मोंके फलको न चाह कर नाना प्रकारकी यज्ञ भाव
न तथा तप रूप क्रियाएँ मुमुक्षुओं द्वाराकी ६·प्र
ती हैं जिससे वे मोक्षके अधिकारी हो जाते गकि
। बिना दूधकी गायके समान बिना भावनाके आत्य
मका उच्चारण पूर्ण लाभ नहीं देता। अतः ७·उ
मात्माके तत् नामके उच्चारणके साथ साथ मक
भावना करना भी आवश्यक है कि जैसे
की सर्व चेष्टायें जल रूप हैं उसी प्रकार सब
सुदेव है, वासुदेवसे भिन्न समस्त कारक
र क्रियाएँ कुछ नहीं।

४ ५ ६२ १ २ ३ ५

द्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
शस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥१७-२६॥

भगवान कृष्ण ॐ और तत्का प्रयो
बतलाकर अब सत शब्दका प्रयोग बतलाते
उपदेश कर रहे हैं कि सत यह परमात्मा
नाम अविनाशी तत्वका वाचक है, इसलिए
शब्दका प्रयोग नित्य भावमें किया जाता है
श्रेष्ठ भावमें भी किया जाता है क्योंकि अ
करणका जो श्रेष्ठ भाव है वह सत परमात्मा
प्राप्तिका हेतु है तथा हे अर्जुन ! सतशब्द
प्रयोग ईश्वरार्थ शास्त्र विहित कर्मोंमें भी कि
जाता है क्योंकि सतकर्म अन्तःकरण शुद्धि द्व
ईश्वर प्राप्तिके हेतु हैं।

१८. मे मोक्ष सन्यास योग

६३

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥१८-१

भगवान कृष्ण, निष्काम कर्म योगसे किए हुए शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषको क्या फल मिलता है उसका वर्णन करते हैं कि वह शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष कुशल अथवा अकुशल कर्मोंमें उसी प्रकार राग या द्वेष नहीं करता जैसे जाग जानेपर जाग्रत पुरुष स्वप्नके समस्त प्रकारके कर्मोंसे प्रयोजन शून्य हो जाता है। ईश्वर अर्पण बुद्धिसे कर्म करते करते उसका अन्तःकरण कर्म फलकी आसक्ति और पुत्रादिमें ममत्वका त्याग कर देता है जिसके कारण सत्वगुणसे भली-भाँति युक्त हो जाता है। सत्वप्रधान अन्तःकरण होनेपर वह गुरु द्वारा वेदान्त श्रवण मात्रसे आत्मा रूपसे ब्रह्म साक्षात्कार कर लेता है। इसी कारण उसको मेधावी कहते हैं। मेधावी होनेसे वह प्रमाणगत तथा

प्रमेय गत संशयसे रहित है। अतः भगवत अर्पण बुद्धिसे शुद्ध अन्तःकरण होनेपर ही ब्रह्म साक्षात्कार द्वारा कृतकृत्यता प्राप्त होती है।

६४

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृत बुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१८।१६॥

भगवान कृष्ण देहमें आत्मबुद्धि रखनेवाले दुर्मतिका लक्षण बतलाते हुए उपदेश दे रहे हैं कि स्थूल देह, अहंकार, इन्द्रियाँ, प्राण तथा इन्द्रियोंके देवता ये पाँच ही सम्पूर्ण कर्मोंके आरम्भक हैं। परन्तु ऐसा होनेपर भी जो आत्मा और अनात्माके तत्वके विचारसे शून्य होनेके कारण अकर्ता शुद्ध आत्माको कर्ता मानता है देहमें आत्म बुद्धिवाला होनेसे वह

दुर्मति आत्माको नहीं जानता। जैसे बादलोंके दौड़नेपर चन्द्रमाको भी दौड़ता हुआ तथा रेलके दौड़नेसे वृक्षोंको भी दौड़ता हुआ मूर्ख बालक मानते हैं उसी प्रकार अज्ञानी अनात्माके कर्ता भोक्ता आदि धर्म निष्क्रिय आत्मामें आरोपित करते हैं।

९५

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते॥१८। ७॥

भगवान कृष्ण ब्रह्मज्ञानीकी महिमाका वर्णनकर रहे हैं कि जिस ब्रह्मवेत्ताका अन्तःकरण अहंभावसे रहित है और बुद्धिलिपायमान नहीं होती अर्थात धर्मशीलकी भांति धर्माधर्मके संस्कारोंसे युक्त नहीं होती वह ब्रह्मदर्शी पुरुष

तीनों लोकोंको मारनेपर भी नहीं मारता है और न बन्धनको प्राप्त होता है। जैसे रस्सीके सर्पको रस्सीरूप जानकर प्रहार करनेवाले पुरुषको रज्जु सर्पके मारनेका फल नहीं होता अथवा जागने-पर जैसे स्वप्नके कर्म फल नहीं देते हैं उसी प्रकार तत्वदर्शीको स्वप्नवत जाग्रतके धर्माधर्म फल नहीं दे सकते। ऐसा दृढ़ अपरोक्ष ज्ञानी तीनों लोकोंको मारनेपर भी नहीं मारता क्योंकि उसकी दृष्टिमें त्रिलोकी स्वप्नवत अध्यस्त प्रतीति मात्र है। अतः जैसे मनोराजकी सृष्टिको मारनेसे पाप नहीं लग सकता उसी प्रकार मनोमात्र संसारको मारनेपर भी तत्वज्ञानीको पाप नहीं लगता। जैसे नीलमासे आकाश लिपायमान नहीं होता अथवा मृगजलसे बालू गीली नहीं होती। जैसे मेघस्थ तथा घटमें

स्थित आकाश मेघ और घटके कर्मोंसे असंग निर्लेप होता है उसी प्रकार अनात्म देहोंके विकारोंसे देहस्थ आत्मा निर्लेप, असंग और निष्क्रिय है। परन्तु ज्ञानी इस रहस्यको जानता है, अज्ञानी नहीं जानता क्योंकि अज्ञानी घटवत देहोंको ही आत्मा जानता है। आकाश-वत असंग आत्माको अपना स्वरूप जाननेवाला शास्त्र विपरीत लोककी हिंसा करता हुआ भी आत्म दृष्टिसे कुछ नहीं करता। इसी कारण बन्धनको प्राप्त नहीं होता। फिर शास्त्रानुकूल वर्तता हुआ ज्ञानी कर्म बन्धनको प्राप्त न हो तो इसमें क्या आश्चर्य है।

९६

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो
धृत्यात्मानं नियम्य च।

शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा
रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥ १८।५१ ॥

भगवान कृष्ण ब्रह्मनिष्ठा प्राप्त करनेके उपाय बतला रहे हैं कि संशय और विपर्ययसे रहित बुद्धिसे युक्त सात्विक धैर्यसे शरीर, मन इन्द्रियोंको वशमें रखना चाहिए और शब्दादि विषयोंका दोष दर्शन करते हुए त्याग करना चाहिए अर्थात् सुखहीन क्षणभंगुर विषयोंका ध्यान नहीं करना चाहिए। संसारको मृगजलकी भाँति प्रतीतिमात्र विचारकर राग द्वेषका त्याग करना चाहिए। संसारको अविद्याका परिणाम समझकर संसारको स्वप्नसे मिलान करते हुए सत बुद्धि, सुख बुद्धिका त्याग करते रहना चाहिए।

९७

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१८।५३॥

ब्रह्मनिष्ठाके साधन बतलाते हुए भगवान कृष्ण उपदेश दे रहे हैं कि विवेक वैराग्य षट सम्पत्ति मुमुक्षुतासे युक्त साधकको देह इन्द्रियादि में अहंभाव रूप अहंकारका उसी प्रकार त्याग कर देना चाहिए जैसे रेलके डिब्बेमें अथवा धर्मशालाके कमरेमें ठहरे हुए यात्री डिब्बे और कमरेमें अहंभाव नहीं रखते। जो यात्री रेल और धर्मशालाको सच्चा समझता है वह भी रेलके डिब्बे और धर्मशालाके कमरेमें अहंभाव नहीं रखता फिर जो विवेकी संसाररूपी रेल या धर्मशालाको स्वप्नवत समझता है वह डिब्बे या कमरेकी भाँति देहमें स्थित हुआ भी किस प्रकार अभिमान कर सकता है? अतः अनात्म देहोंको व जगतको जड़ दृश्य तथा स्वप्नवत मिथ्या जानकर अहंकार, बल, घमंड, काम,

क्रोध तथा परिग्रह अर्थात आसक्तिका त्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार अहंकार और ममता रहित स्वरूपानुसन्धान करनेवाला साधक ही ब्रह्मरूप होनेके योग्य होता है। तीनों देहोंसे आत्माको पृथक जानकर देहोंमें अभिमान न करना ज्ञानका फल है। ज्ञानका फल उदय होने पर ही ब्रह्ममें अभिमान करनेकी योग्यता आती है। योग्यता आनेपर ही ब्रह्ममें देहाभिमानकी भाँति सहज अभिमान हो सकता है जो ज्ञानकी अवधि है।

६८

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां ॥१८-५४॥

भगवान कृष्ण ब्रह्मभूत पुरुषके स्वभावका

वर्णन करते हुए उपदेश दे रहे हैं कि श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा जिस साधकने मैं ब्रह्म हूँ ऐसा दृढ़ निश्चय प्राप्त कर लिया है तथा जो प्रसन्नात्मा अर्थात कृतकृत्य हो चुका है वह हर्ष शोकसे रहित पूर्ण काम हो जाता है क्योंकि परमार्थ दृष्टिसे वह भोग्यरूप कार्य कारण सम्पूर्ण देह दृश्यका तथा भोक्ता जीवोंका अपने स्वरूप में अत्यन्ताभाव देखता है और अपने स्वरूपको निर्द्वैत परमानन्द घन जानता है फिर शोक और काङ्क्षा किसके लिए और क्यों करे। वह तत्वदर्शी राग द्वेष रहित होने से तथा अपने को सबकी आत्मा जाननेसे सब भूतोंमें सम है। ऐसा ज्ञान निष्ठ पुरुष मुझ परमेश्वरकी ज्ञान लक्षणा चतुर्थ भक्तिरूप पराभक्तिको अर्थात ब्रह्म निष्ठाको प्राप्त होकर जीवन्मुक्त हो जाता है।

६६

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ।।१८–६१।।

भगवान कृष्ण देहाभिमानीके लिए कर्मकी अवश्य कर्तव्यता बोधन करनेके लिए उपदेश दे रहे हैं कि जैसे यन्त्र पर आरूढ़ कठपुतलियों को सूत्रधारी घुमाता है उसी प्रकार ईश्वर समस्त प्राणियोंको मायासे घुमाता हुआ अर्थात स्वाभाविक कर्मोंमें प्रवृत्त कराता हुआ हृदयमें अर्थात बुद्धि रूपी गुफामें स्थित रहता है। देह को ही यन्त्र समझना चाहिए और इसमें अभिमानकर बैठना ही इसपर चढ़ना है। इसके पश्चात अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार शुभ अशुभ कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाना ही भ्रमण करना है। पृथ्वी जैसे खट्टे मीठे फलोंके बीजोंके

अनुसार उनमें खट्टा-मीठा रस उत्पन्न करती रहती है उसी प्रकार जीवोंके संस्कारोंके अनुसार ईश्वर शुभाशुभ कर्मोंमें प्रेरित करता है। दोष गुण संस्कारोंका है, ईश्वर निर्दोष है। अतः अशुभ संस्कारोंको नाश करनेके लिए यत्न करते रहना चाहिए।

१००

सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८।६६॥

भगवान कृष्ण अर्जुनको निमित्त बनाकर मुमुक्षुओंको मोक्षके अन्तरङ्ग साधन ज्ञान योग का सार सुना रहे हैं कि जैसे स्वप्न और स्वप्न का कारण निद्राके त्यागके बिना जाग्रतकी शरण प्राप्त नहीं हो सकती उसी प्रकार सर्व

धर्मोंके त्यागके बिना निरुपाधिक परम् ब्रह्म परमात्माकी शरण प्राप्त नहीं हो सकती। अतः वर्ण आश्रम, देह, इन्द्रिय, प्राण, मन तथा बुद्धि आदिके समस्त धर्मोंका त्याग कर अर्थात मिथ्या तीनों देहोंका अभिमान छोड़कर मेरी अनन्य शरण प्राप्त करो अर्थात मुझ परम्ब्रह्ममें ही आत्मबुद्धि करो क्योंकि घटाकाशवत आत्मा का महाकाशवत मुझ ब्रह्मसे भेद अविद्याजनित है। जैसे रज्जुमें प्रतीत होनेवाले सर्प दण्ड आदि रज्जुसे अन्य कुछ नहीं हैं उसी प्रकार मुझ सर्वाधिष्ठान परमेश्वरसे भिन्न अन्य कुछ नहीं है। इस प्रकारके निश्चय वालेके हृदयमें ही मेरे ब्रह्म स्वरूपका आत्मारूपसे साक्षात्कार होता है। मैं गुरुरूपसे अपने सच्चिदानन्द स्वरूपका आत्मारूपसे साक्षात्कार कराकर तुमको

समस्त धर्माधर्म बन्धन रूप पापोंसे उसी प्रकार मुक्त कर दूँगा जैसे जाग्रत पुरुष सोये हुए पुरुषको जगाकर स्वप्नके समस्त शुभाशुभ कर्म बन्धनोंसे मुक्त कर देता है। अतः हे अर्जुन मुझ जगद्गुरु परमेश्वरकी शरणमें आ जानेसे अब जन्म-मरण आदि दुःखोंकी चिन्ता मत कर। इसी प्रकार मुमुक्षुको सद्गुरुकी शरण प्राप्त होने पर जन्म-मरणसे निश्चिन्त हो जाना चाहिए।

१०१

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञान यज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥ १८-७०॥

भगवान कृष्ण इस गीताके पढ़नेका फल बतला रहे हैं कि जो मनुष्य हम दोनोंके सम्वाद

रूप सर्व-उपनिषदोंका सार इस धर्मयुक्त गीता ग्रन्थको नित्य पढ़ेगा। उसके द्वारा मैं सर्व यज्ञों में श्रेष्ठ मोक्षदायक ज्ञान यज्ञसे पूजित हूँगा। गीता पढ़ने वाला भी वही मोक्ष रूप फल ज्ञान-द्वारा प्राप्त करता है जो पढ़ानेवाले को प्राप्त है या होता है। ऐसा मेरा निश्चय है। अतः भगवान कृष्ण और अर्जुनके सम्बादरूप इस अत्यन्त गोप्य गीता ग्रन्थका नित्य श्रद्धा भक्ति पूर्वक पारायण करना चाहिए। घरमें गीता रहते हुए भी गीता न पढ़ना उतनी ही नासमझी है जितनी नासमझी पारस रहते हुए प्रमादवश लोहेको सोना न बनाने में है।

* हरिः ॐ तत्सत् *







कक्षा ५		कक्षा ६		कक्षा ७		योग		औसत मु
हिन्दी	उर्दू	हिन्दी	उर्दू	हिन्दी	उर्दू	हिन्दी	उर्दू	साल भ

व	कक्षा		कक्षा २		कक्षा ३		कक्षा ४	
दू	हिन्दी	उर्दू	हिन्दी	उर्दू	हिन्दी	उर्दू	हिन्दी	उर्दू